नेपाल में वेद प्रचार

गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर व गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना के दृश्य तो हमने देखे नहीं। इन संस्थाओं का शैशव काल भी नहीं देखा परन्तु इन संस्थाओं के आरम्भिक काल के इतिहास का सूक्ष्म व व्यापक अध्ययन हमने किया है। गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सवों के विस्तृत वृत्तान्त हम यदा-कदा पढ़ते ही रहते हैं। इन्हें पढ़कर हम आज भी फड़क उठते हैं। वह युग तो लौटकर नहीं आएगा परन्तु अपने तप, त्याग, लग्न, श्रद्धा व उत्साह से जातियाँ, संघठन व राष्ट्र अपने अतीत को वर्तमान कर सकती हैं। इसका उदाहरण वीतराग पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के नेतृत्व में यतिमण्डल ने प्रस्तुत कर दिया है।

कभी आर्य जनता झूम-झूमकर गाया करती थी :—

गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है

नेपाल की पवित्र भूमि पर ऐसा ही हुआ है। यतिमण्डल के एक कर्मठ सदस्य ब्र नन्दकिशोर जी ने अपनी साधना से एक चमत्कार-सा कर दिखाया है। नेपाल के आर्यवीर युवक विद्वान् पीताम्बर जी आदि को साथ लेकर ब्रह्मचारी जी ने नेपाल में वेद प्रचार का महाभियान चलाया। कई उत्साही युवक व धर्म प्रेमी-सज्जन वैदिक धर्म-प्रचार के लिए समर्पण भाव से कार्यरत हैं। २५,२६ २७ २८ मई ८९को विराटनगर नेपाल में विश्व-शांति महायज्ञ रखा गया। इसी पुण्य अवसर पर गुरुकुल की स्थापना की गई। आर्यसमाज मन्दिर की भी नींव रखी गई।

नेपाल के आर्य-दानियों व आर्यवीरों के नाम हम फिर किसी लेख में देंगे, बिना किसी विशेष प्रचार व विशेष उद्योग के पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के संकेत पर आर्यसमाज के दर्जनों साधु, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, विद्वान् व गृहस्थी प्रचण्ड लू का ध्यान न करते हुए लम्बी-लम्बी यात्राएं करके नेपाल पहुंच गए। आर्यसमाज की सभाओं ने इस शुभकार्य में तनिक भी रुचि न ली, किसी सभा के पत्र ने इस प्रचार यात्रा को महत्व न देने की नीति अपनाई।

किसी साप्ताहिक ने अपने मुख पृष्ठ पर इसका समाचार न दिया। दिल्ली में तो और भी कमाल हो गया। कोई भी 'नेता' पूज्य स्वामी जी को मिलने तक न आया। वे नेपाल से लौटे तो भी किसी ने उनसे मिलने का कष्ट नहीं किया, धूम-धड़ाके से दूर उस साधु पर इस उपेक्षा का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा।

देश के पांच-छः प्रान्तों के आर्य वहां पहुंच गए। क्या यह कोई साधारण सी बात है? कश्मीर से लेकर कर्नाटक तक आर्य नेपाल में वीर शुक्रराज का जय-जयकार करते पहुंचे। आर्यसमाज के लेखक पहुंचे, प्रकाशक पहुंचे, पुस्तक विक्रेता पहुंचे, कवि पहुंचे, आचार्य-वेदाचार्य और दूध पीते बालक पहुंचे। जब स्वामी सर्वानन्द जी महाराज देहली पहुंचे तो आर्यसमाज चूनामण्डी पहाड़गंज ने उनके रहने व भोजन आदि की सुन्दर व्यवस्था की। मेरे साथ अबोहर क्षेत्र के एक सम्पन्न कृषक बन्धु का पुत्र संजय व मेरी पुत्री कु० कविता आर्या भी थीं। उनके लिए आरक्षण न हो सका। मैं चिन्तित था कि अब क्या करूं। स्वामी जी ने कहा—चिन्ता न करें और चलें।

आर्यसमाज नया बांस ने श्रीमहाराज के साथ जाने वालों के लिए मार्ग के लिए खाने-पीने की सब सामग्री देकर अपनी भरपूर श्रद्धा का परिचय दिया। मार्ग में एक कमी रही कि आर्य यात्रियों ने कहीं जयकारे न गुंजाए। कानपुर के स्टेशन पर उतर कर मैंने जयकारे गुंजाए तो पता चला कि ऋषि की सेना कहीं जा रही है - कटिहार व जोगबनी बिहार में ब्र० नन्दकिशोर व आर्य जन स्वागत को आए हुए थे। जोगबनी में धर्मशाला में सबको ठहराया गया। स्टेशन से पैदल पूज्य स्वामीजी महाराज चल पड़े। ऋषि दयानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द, वीर लेखराम, प्राणवीर शुक्रराज, स्वामी अभेदानन्द जी आदि के जयकारों से नगर गूंज उठा। सीधे-सादे, दुबले-पतले आर्य महामुनि के दर्शन करके सब जन तृप्त हो रहे थे। श्रद्धा सजीव होकर झूम रही थी।

किसी ने यह भी कहा, अच्छा हुआ कि इस यात्रा में कोई नेता, अभिनेता व अभिनेत्री नहीं है।" विशुद्ध धार्मिक वातावरण था। अतिथियों की विराट-नगर व जोगबनी में बड़ी सेवा की गई। नेपाल जाकर प्रभात फेरी निकाली गई। शोभा यात्रा के लिए वीर शुक्रराज पर कोई गीत नहीं था। यह आर्यों की भयंकर भूल थी। मैंने तत्काल—

'यह ओ३म् का झण्डा आया'

निम्न पंक्तियां रचकर जोड़ दी : -

शुक्रराज ने सीस कटाया।
अपना पावन रक्त बहाया॥
उच्च अमर पद पाया।
यह ओ३म् का झण्डा आया॥

नेपाली भाई बार-बार इन्हीं पंक्तियों को गाने को आग्रह करते थे, नेपाल में हुतात्मा पं० शुक्रराज शास्त्री जी का बलिदान पर्व शासकीय स्तर पर मनाया जाता है। सारा नेपाल उनके नाम नामी से परिचित है। नेपाल में वे जन-जागरण के अग्रदूत थे। नेपाल में वैचारिक स्वातन्त्र्य के लिए आपने अपना बलिदान दिया। उस दृढ़ धर्म-वीर ने आर्यसमाज के झण्डे तले प्राणोत्सर्ग किया।

पहले दिन विराट् नगर में कुछ प्रतिष्ठित आर्य संन्यासियों, विद्वानों व आचार्यों का अभिनन्दन किया गया। नेपाल के पूर्व प्रधान मन्त्री श्री नगेन्द्रजी ने इस महायज्ञ में भाग लेकर आर्य जाति के कल्याण व धर्म-प्रचार के लिए प्रेरणाप्रद विचार दिये। इस सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी, स्वामी विद्यानन्द जी, आचार्य सत्यप्रियजी, लेखक, मीरा यतिजी, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी के व्याख्यान हुए, स्वामी विद्यानन्द जी का व्याख्यान वेद पर था। वीर शुक्रराज की चर्चा करते समय स्वामी विद्यानन्द जी रो पड़े, मैंने नेपाल के इतिहास व आर्यसमाज के बलिदानों पर वीररस पूर्ण व्याख्यान दिया।

यतिमण्डल की इस अवसर पर कई महत्त्वपूर्ण बैठकें हुईं। आर्यसमाज के उज्ज्वल भविष्य के लिए सबकी दृष्टि जहां वयोवृद्ध तपस्वी स्वामी सर्वानन्दजी पर केन्द्रित थी वहाँ आर्य जनता का आशा केन्द्र ब्रह्मचारी नन्दकिशोर भी थे। लोकैषणा से दूर इन दोनों तपस्वियों के सामने आर्य जनता नत-मस्तक हो रही थी। यह सुस्पष्ट था कि किसी भी नेता पर आर्यों को अब कोई विश्वास नहीं। स्वामी सर्वानन्द जी का सम्पूर्ण व्यवहार आर्य-जनों पर गहरी छाप छोड़ रहा था। नेपाल के पूर्व प्रधानमन्त्री जी ने स्वामीजी को अपनी कार में गुरुकुल भूमि में चलने की विनती की। स्वामी जी ने कहा जब सब लोग पैदल जा रहे

है तो मैं भी पैदल चलूंगा। इस पर श्रीमान् नगेन्द्र ने भी अपनी कार छोड़ दी और पैदल श्री महाराज के साथ चल पड़े। चार किलोमीटर की दूरी पर हम लोग गए। वेद मन्दिर व गुरुकुल की नींव का पत्थर स्वामी सर्वानन्द जी ने अपने पवित्र कर कमलों से रखा। बिना किसी अपील के लिए जनता ने धन की वर्षा की।

नित्य-प्रति यज्ञ पर आचार्य सत्यप्रिय जी व पं० वेदप्रकाशजी श्रोत्री के सार-गर्भित प्रवचन व श्री पं० सत्यपाल जी पथिक के भजन होते रहे। सार कि हमने अपनी आंखों से नया इतिहास बनते देखा है। नेपाल की धरती पर गुरुकुल की स्थापना से गौरवान्वित हो गई। यह स्मरण रहे कि नेपाल में वेद प्रचार के लिए समर्पित नेपाली आर्य विद्वान् पं० पीताम्बर जी के निर्वाह की व्यवस्था पं० रतीराम जी शर्मा सीलीगुड़ी कर रहे हैं।

हम सीलीगुड़ी भी गए। पं० रतीराम जी व श्री मन्त्री जी ने हमारी ऐसी सेवा की कि हम सारा जीवन न भूल सकेंगे। श्री रतीराम जी ने एक गोष्ठी की व्यवस्था की। इस में श्री पं० वेदप्रकाश जी ने वैदिक-धर्म व दर्शन पर अपने विचार रखे। आर्य धर्म व संस्कृति पर किए जा रहे आक्रमणों यथा विकासवाद आदि पर मेरा भाषण हुआ। गुरुकुल झज्जर के ब्रह्मचारियों ने नेपाल व सीलीगुड़ी में व्यायाम प्रदर्शन भी किया।

एक बात नोट कर लें कि जहां-जहां स्कूल व दुकानें हैं वहां-वहां झगड़े हैं, प्रचार ठप्प है। जहां-जहां यह रोग नहीं वहां-वहां आर्यसमाज जीवित है। आवश्यकता है कि उत्तम साहित्य व स्वाध्यायशील, चरित्रवान् लग्नशील, निर्लोभी विद्वान् हमारे पास हों। शेष फिर— —'जिज्ञासु'

हौजरी के थोक विक्रेता

हौजरी टोपा तथा हौजरी कपड़ा के निर्माता

सचदेवा ब्रादर्स

१८ ए/१०, डोरीवालान, न्यू रोहतक रोड, करोलबाग

नई दिल्ली-११०००५

फोन : ७७१४७१ ५१६७६७

परमात्मा तथा आत्मा के मध्य कौन ?
यह उलझन किस विधि सुलझाऊं

अनादिकाल से मानव के सामने कई प्रश्न रहे हैं। एक प्रमुख प्रश्न है ईश्वर की प्राप्ति का। जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, उनकी बात तो और है। ईश्वर के स्वरूप की बात भी हम यहां अभी नहीं करते। समस्या तो यह है कि वे जन जो ईश्वर की अथवा सृष्टि के रचयिता की सत्ता में विश्वास रखते हैं, वे ईश्वर को कैसे प्राप्त करें ? विभिन्न मत-पंथों ने अपने-अपने ढंग से इसका उत्तर दिया है। कहने को तो मत-पंथों के लोग ईश्वर को सर्वव्यापक (Omnipresent) अथवा हाजर नाजर मानते हैं परन्तु ईश्वर-प्राप्ति के लिए भक्त लोगों का व्यवहार एक पहेली सी है। अपने आचरण से आस्तिकों ने ईश्वर-प्राप्ति को एक उलझन बना दिया है। यह उलझन कैसे सुलझे ?

लोग मस्जिद आदि को 'खानाए खुदा' परमेश्वर का घर बताते हैं तो भी उलझन पैदा होती है। जब लोग काशी, मक्का-मदीना, अजमेर की दरगाह, हरिद्वार, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम् की तीर्थ यात्राएं प्रभु-प्राप्ति के लिए करते हैं तो उलझन पैदा होती है। जब लोग परमात्मा को आकाशस्थ (Heavenly Father) बताकर उसे सृष्टि से, सृष्टि के प्राणियों से दूर बताते हैं तो उलझन खड़ी होती है। जब लोग प्रभु को ऊपर वाला बताते हैं तो वह नीचे वालों से दूर एक विचित्र सत्ता के रूप में माना जाता है। यहीं से यह उलझन पैदा होती है। लोग अपने आपको परमात्मा की सन्तान भी मानते हैं फिर भी उस तक पहुंचने या उसे पाने के लिए (PROPHETS) नबियों, पैगम्बरों व गुरुओं की शरण खोजकर उन्हें (Mediators) मध्यस्थ बनाकर उनकी कृपा से प्रभु प्राप्ति की बात करते हैं।

यह एक बड़ी उलझन है। क्या कोई बच्चा अपने माता-पिता के मिलन के लिए अड़ोसियों-पड़ोसियों की सहायता व शरण में जाता है ? क्या माता-पिता व सन्तान का सम्बन्ध स्वाभाविक है अथवा कोई (Business Type) व्यापारिक क्रिया है जिनमें (Broker) दलाल का होना आवश्यक है ? निश्चय ही प्रभु व मनुष्य के मध्य में, परमात्मा व आत्मा के मध्य कोई और नहीं आ सकता।

इस उलझन पर विचार करते समय हम ईश्वर की वाणी वेद की शरण में जाते हैं। वेद से इस उलझन को सुलझाने के लिए कहा। परमात्मा की वाणी यह कहती है कि जब वह प्रभु सर्वव्यापक है तो उसकी खोज व प्राप्ति में काशी, काबा, व्यास, कुरुक्षेत्र आदि में क्यों भटक रहे हो। जब वह सर्वत्र है तो उसे पाने के लिए कहां जाओगे। **वह प्रभु तुम्हारे पास नहीं क्या ?**

वेद कहता है उलझन यह नहीं कि प्रभु की प्राप्ति कैसे हो ? वेद के अनुसार उलझन तो कुछ और ही है। वेद क्या उलझन बतलाता है ? अथर्ववेद में आता है :—

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

इस मन्त्र में कहा गया कि परमात्मा के काव्य को देखो। वह इतना निकट है कि कोई उसको छोड़ नहीं सकता। वह इतना निकट है कि कोई उसे देख नहीं सकता। फिर भी ईश्वर का वह काव्य कभी मरता नहीं; न जीर्ण होता है।

वेद ने कितने सरल ढंग से दर्शन की अत्यन्त सूक्ष्म बात कह दी। कैसे अनूठे ढंग से एक गुत्थी को यहां सुलझाया है। वेद विश्व के मानवों को परेशान कर रही उलझन को सुलझाते हुए कह रहा है उलझन यह नहीं कि प्रभु की प्राप्ति कैसे हो ? उलझन यह है कि (१) एक वह है जो छोड़ता ही नहीं (२) और एक वह है जिसे दीखता नहीं।

वह कौन है जो छोड़ता नहीं।
वह कौन है जिसे दिखाई नहीं देता ?

सृष्टि में दो चेतन सत्तायें हैं। एक है परमात्मा और दूसरा है आत्मा।

परमात्मा सर्वव्यापक होने के नाते जड़, चेतन किसी को भी नहीं छोड़ता। अजी 'छोड़ता' शब्द का प्रयोग भी हमें नहीं जंचता। वैदिक दर्शन तो यहां तक कहता है कि वह प्रभु सर्वत्र होने के नाते जड़, चेतन को छोड़ ही नहीं सकता। छोड़कर वह जावेगा कहां ?

दूसरी उलझन है कि एक अभागा है जिसे दिखाई ही नहीं देता। यह अभागा है जीव या आत्मा। परमात्मा तो आत्मा को छोड़ता नहीं और आत्मा को दीखता ही नहीं कि परमात्मा मेरे पास है। यह संसार भर में प्रभु की प्राप्ति के लिए भटक रहा है।

जब प्रभु पास हैं तो इसे दिखाई क्यों नहीं देता ? इसीलिए कि वह अति निकट है। आंख तो अपने पड़ोसी की नाक को भी नहीं देख सकती। क्या आंख ने दूसरे पड़ोसी का माथा देखा क्या ? आंख ने स्वयं को देखा क्या ? हमारी पीठ हमसे कितनी दूर है ? किसी ने अपनी पीठ देखी क्या ? इस प्रकार से देखने व प्राप्ति के इन प्रयासों में भटक कर मानव उलझन में उलझ गया है। जिस घड़ी मनुष्य यह समझने लगेगा कि मेरा प्रभु मेरे पास है उसे पाने के लिए मुझे कहीं आना नहीं, कहीं जाना नहीं.....उसी क्षण से यह उलझन स्वतः ही सुलझती हुई दिखाई देगी।

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है कि "मनुष्य वस्त्रों को उतार कर फेंक सकता है परन्तु त्वचा को नहीं उतार सकता, क्योंकि त्वचा का शरीर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ईश्वर का और सृष्टि का इतना सानिध्य है कि हम ईश्वर को छोड़ नहीं सकते।"[1]

सृष्टि के कण-कण में विराजमान प्रभु सृष्टि की व्यवस्था कैसे विचित्र ढंग से करता है ? यही देखने वाली बात है। इस पर हम तनिक विचारें तो प्रभु प्राप्ति के लिए भटकना बन्द हो जावे और मनुष्य प्रभु को अपने पास अनुभव करने लगे। उसे पता चल जावेगा कि हम प्रभु में हैं और प्रभु हम में है। नीम का व आम का पेड़ पास-पास ही उग रहे हैं। मिर्ची के पौधे व द्राक्ष की बेल साथ-साथ उग रहे हैं। उसी खेत से नीम व मिर्ची कड़वाहट को खींच रहे हैं और उसी मिट्टी से आम व द्राक्ष माधुर्य का खींच रहे हैं।

---

१. द्रष्टव्य 'वेद प्रवचन' द्वितीय संस्करण पृष्ठ १९८

सूर्य धरती से करोड़ों किलोमीटर की दूरी पर है। हमारे नयन सूर्य के निकलते ही देखने लग जाते हैं। दोनों में यह सम्बन्ध कैसे हो गया ? यही तो प्रभु का काव्य है। काव्य रचना को बोलते हैं। यह जगत् भी प्रभु की रचना है। इसका यह सौन्दर्य न कभी बूढ़ा होगा और न नष्ट होगा। प्रभु के ये अटल नियम प्रलय के पश्चात् भी नहीं टूटेंगें। सृष्टि से पूर्व प्रलय और प्रलय से पूर्व की सृष्टि में भी यही नियम कार्य कर रहे थे। प्रलय के पश्चात् सृष्टि में भी यही विधान चलेगा। यह विधान, यह काव्य (Eternal) नित्य है। प्रभु का दूसरा काव्य (Poetry) वेद ही है। वेद भी न पुराना होगा, न बूढ़ा और न ही मरेगा। सत्य कभी पुराना या बूढ़ा हो सकता है ? अग्नि का जलाने का गुण न कभी छूटेगा और न यह नियम टूटेगा। यह सत्य है और अमर है।

ईश्वर जो दिखाई नहीं देता तो परेशान क्यों हो रहे हो ? यह उलझन सुलझ सकती है। वेद कहता है कि आप प्रभु के काव्य को देखो। प्रभु के दर्शन होंगे, इसका साक्षात्कार होगा। उसकी अनुभूति नास्तिक से नास्तिक को भी हो सकती है। हां ! योगी जनों व नास्तिक की अनुभूति में Difference of Degree तो हो सकता है। हमारे सहस्रों नयन होते और एक सूर्य न होता तो सहस्रों आंखों को आप व मैं क्या करते ? इनका कुछ लाभ होता ? क्या कुछ दिखाई देता ? यदि सहस्रों सूर्य इस धरती पर प्रकाश बखेरते और हमारी एक भी आंख न होती तो इतने सूर्यों का कुछ लाभ होगा ? क्या कोई आंखों के बिना कुछ देख पाता ? कैसी विचित्र रचना है ! कैसा अद्भुत काव्य है प्रभु का ! आंखों का व सूर्य का सम्बन्ध किसने जोड़ा ? वही जो मेरे व आपके अत्यन्त पास है और जिसका सूर्य में भी वास है। देहली जैसे नगरों में छोटे-बड़े जन, जिधर जिसका मुंह हो, दौड़ने लग जावें तो क्या होगा ? बच्चे, बूढ़े तो मरेंगे ही, युवक-युवतियां भी परस्पर टकरा-टकरा कर मरेंगे, असंख्य दुर्घटना-ग्रस्त व घायल होंगे परन्तु प्रभु का काव्य तो देखिए कि असंख्य तारे, चन्द्र व सूर्य आदि ग्रह, उपग्रह निरन्तर दौड़ रहे हैं। किसी को भी चैन नहीं। इन ग्रहों-उपग्रहों की न आंखें हैं, न उनका मस्तिष्क और न ही इनके कान हैं। ये सब जड़ हैं। इनमें सोच-समझ कर, देख-सुन कर चलने की क्षमता कहां। इनके पैर नहीं, टांगें नहीं, फिर भी ये निरन्तर दौड़ रहे हैं। कितने आश्चर्य की बात

है कि मनुष्य परस्पर टकराते हैं। जिनमें प्रशिक्षित चालक होते हैं। परन्तु इन ग्रहों-उपग्रहों की टक्कर कभी भी नहीं हुई। यह है प्रभु का अद्भुत काव्य।

इस रचना पर जितना अधिक विचारेंगे, उतना ही आनन्द आएगा। प्रभु के अस्तित्व की अनुभूति होगी। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि उस सविता ने, प्रभु ने अपनी व्यवस्था से नियम बद्धता से सृष्टि को रमणीक बनाया है। सृष्टि का सौन्दर्य प्रभु के विधान, उसके नियमों से है। प्रभु के उस विधान अमर काव्य का नाम वेद-वाणी है। जिस ज्ञान का प्रकाश वेद के रूप में प्रभु ने किया है उसी ज्ञान के अनुरूप उसका जगत् रूप काव्य और यह सारा ब्रह्मांड है। वेद में ऐसा कुछ भी नहीं, जो सृष्टि नियम के विपरीत हो और सृष्टि के जो नियम इस जगत् को धारण कर रहे हैं परमात्मा ने वेदरूपी सद्ज्ञान में उन्हीं का प्रकाश किया है। जो भूगोल शास्त्र व मानचित्र का सम्बन्ध है, वही वेद का व ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है।

आइए! प्रभु की रचना, इस जगत् पर बारम्बार विचार करें, हम वेद ज्ञान को सुनें, वेद का पाठ करें, वेद मन्त्रों पर मनन करें। हमारे हृदयों में विराजमान प्रभु की हमें प्रतिक्षण अनुभूति होगी। वैज्ञानिक प्लास्टिक की कृत्रिम घास व फूल, फल तथा पौधे तो बना सकते हैं परन्तु जीवित घास का तृण व मेरा और आपका एक रोम कोई बना सकता है क्या? इस विषय पर और चिंतन करें। वेद ने एक चिरन्तन प्रश्न का उत्तर दे दिया। एक उलझन थी सो सुलझा दी। अब आगे बढ़ना और जीवन-निर्माण करना हमारा काम है।

महर्षि की अमृत धारा

महर्षि दयानन्द ने सब मानवीय रोगों के लिए अमृत धारा दी है। महर्षि के आध्यात्मिक विचारों को शान्त, निर्मल सरिता में डुबकी लगाइये। जीवन में एक रस उत्पन्न होगा। ऋषि के सामने मानव की सर्वाङ्गीण उन्नति का वैदिक लक्ष्य है।

ऋषि लिखते हैं:—"आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिए, जिससे सब दुःख दूर हों, हमको सदा सुख ही रहे।" ऋषि ने इस प्रार्थना में स्पष्ट कर दिया है कि वैदिक धर्म ऐहिक सुखों की निन्दा नहीं करता और ऐहिक सुख ही सब कुछ नहीं, ध्येय धाम दूर है।

ईश्वर कैसे प्राप्त हो ? ऋषि स्वयं लिखते हैं—"आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हों।" इस पर हम टिप्पणी नहीं करते। ऋषि का जीवन चरित्र पढ़ने व वेद भाष्य पढ़ने से यह स्पष्ट हो सकता है।

सृष्टि का विज्ञान दीजिए—ऋषि परमेश्वर से प्रार्थी हैं "कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिए।" यह स्मरण रखें कि विश्व इतिहास में सदियों के बाद महर्षि दयानन्द ही प्रथम महापुरुष हुए हैं जिन्होंने धर्म का प्रकाश करते हुए विज्ञान का अभिनन्दन किया है।

गुण सम्पन्नता की प्रार्थना—"हे कृपानिधे ! हमको विद्या, शौर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विभिन्न धन-ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेश सुख संपादनादि गुणों में सब नरदेहधारियों में उत्तम करो।" महर्षि जहां पराक्रम और ऐश्वर्य के लिए प्रार्थी हैं, वहां मानवीय विकारों पर brake लगाने के लिए ईश्वर से विनय की कामना करते हैं। विनय के अभाव में ही बड़े-बड़े सम्राट् और बड़े-बड़े साम्राज्य डूबे हैं।

राज्य कैसे बढ़े ? "हम पर सहाय करो, जिससे सुनीतियुक्त हो के हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।" साधनों के अभाव से इतने राष्ट्र नहीं बिगड़े जितने कि कुनीतियुक्त शासकों के व्यवहार से बिगड़े हैं।

सुनीति कैसे मिले ? ऋषि स्वयं इस प्रार्थना के साथ लिखते हैं, "सत्य-विद्या से युक्त सुनीति दें।"

विशेष मित्रता—"हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा विशेष मित्रता आप से ही रखें।" आर्य कहाने वाले हम लोग इस आर्ष विनय को समझने का यत्न करें।"

परमात्मा का दैनिक उपदेश—"स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो···।" क्या हमारे हृदय में परमेश्वर का उपदेश नित्य सुनाई देता है ? यदि नहीं तो कारण क्या है ? आर्ष वचन तो यही है ईश्वर सब जीवों के हृदय में नित्य सत्योपदेश करता है।

पुरुषार्थी परमार्थी बनें—"परस्पर प्रीतिमान, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों। एक दूसरे का दुःख न देख सकें।" कितनी सुन्दर भद्र भावना है। मानव के कल्याण का क्या कोई और मार्ग है ?

"निर्वैर प्रीतिमान, पाखण्ड रहित करें। पाखण्ड चाहे धर्म के नाम पर हो, चाहे राजनीति के क्षेत्र में हो, वैर-विरोध और छलछद्म का कारण बनता है।

ऋषि ने विनय की है—"यथायोग्य उद्यम को कभी मत छोड़ो।" मनुष्य के लिए यह उपदेश रूपी अमृतधारा सर्व-सुखों की खान है। ऋषि 'परम पुरुषार्थ' का आदेश देते हैं। ऋषि ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सन्तोष की परिभाषा भी अत्यन्त पुरुषार्थ लिखा है। जिसके सन्तोष की परिभाषा अत्यन्त पुरुषार्थ है, उसके पुरुषार्थ की परिभाषा क्या होगी ?

मान प्रतिष्ठा पाकर—"हे ईश्वर ! सदैव सुखी हो के आप की आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूं।" दुःख में तो सब स्मरण करते हैं। आर्ष विनय यह है कि सुख के झूले में झूलते हुए भी परमेश्वर की आज्ञा का पालन करें और उस सच्चिदानन्द स्वरूप की उपासना करते हुए आगे बढ़ें।

निर्भयता—वैदिक धर्म म ईश्वर से समीपता की कसौटी निर्भयता भी है। निर्भय होकर सत्य नहीं कह सकते तो फिर भक्त कैसे ? ऋषि की विनय है—"किञ्च किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो। निर्भय होकर परमानन्द को भोगें।

जड़ता दूर हो--ऋषि की विनय है, "मेरी जड़ता सब दूर हो जाय।"

यदि जीवन में सत्य नहीं, न्याययुक्त प्रवृत्ति नहीं, सत्संग में रुचि नहीं, सन्ध्या में रस नहीं, उद्यम नहीं, पराक्रम नहीं, परम देव का हृदय में नित्य सत्योपदेश नहीं सुनाई देता तो हम जड़ता से ग्रस्त हैं।

प्रभु भक्त दयानन्द और उसकी अमृतधारा

वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मौलिक भेद यह है कि आर्य धर्म व दर्शन बड़प्पन की कसौटी—नियम पालन, अनुशासन सृष्टि-नियम के अनुसार व्यवहार मानता है। अवैदिक मतों की मान्यता इसके ठीक विपरीत है। महर्षि दयानन्द की महानता उनके तपोबल, योगबल, ब्रह्मचर्य, संयम, विद्वता, सत्य भाषण, प्रभु की आज्ञा निभाने में है। महात्मा पातञ्जलि व कणाद आदि ऋषि परमेश्वर की आज्ञा को जानते व मानते थे। इसी कारण आर्यों के पूज्य समझे जाते हैं। हजरत ईसा, हजरत मुहम्मद, पौराणिक देवी-देवता, मध्यकाल के कई सन्त, महन्त व आज के साईं बाबा व सत्य साईं बाबा आदि इसी कारण बड़े हैं, क्योंकि ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करके चमत्कार दिखाने की बात करते हैं। इनके चमत्कारों के कारण इनका बड़प्पन है।

वैदिक (आध्यात्मिक) जीवन की नींव यम-नियम पर टिकी है। यम-नियम प्रारम्भ है और समाधि उसका दूसरा सिरा है। वैसे देखा जावे तो वैदिक धर्म में नियम पालन आरम्भ है तो अन्त भी यही है। प्रभु प्रेम का आरम्भ प्रभु के नियम को समझने, जानने व मानने से होता है तो इस प्रेम की पराकाष्ठा का फल प्रभु के नियमों का सहज रीति से पालन है।

संसार के किसी ग्रन्थ या पन्थ में आप प्रभु के नियमों के पालन के लिये इतनी प्रबल प्रार्थनाएं न पायेंगे, जितनी कि वैदिक साहित्य में। वैदिक साहित्य

में भी आर्षग्रन्थों में जितना बल इस पर महर्षि दयानन्द ने दिया है, इतना और किसी ने नहीं। महर्षि दयानन्द तो 'आर्याभिविनय' में प्रभु से मांग करते हैं कि तेरी आज्ञा के विरुद्ध न जावें। ऋषि की दृष्टि में प्रभु का विरोध और उसके सृष्टि नियम का विरोध एक ही बात है। शब्द भेद है, भाव भेद नहीं।

महर्षि और स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर ईश्वर से उसकी आज्ञा पालन व उपासना में तत्परता मांगते हैं। उसका परस्पर क्या सम्बन्ध है? वैदिक सुधा सिंधु में (आर्याभिविनय) डुबकी लगाने वाले इस रहस्य को समझते हैं। ईश्वर की आज्ञा का पालन व उपासना अन्योन्याश्रित हैं। हम यह कहेंगे कि इनको ऐसे समझें जैसे तन व प्राण। आर्यों में उपासना की कल्पना—ईश्वर की आज्ञा पालन के बिना, की ही नहीं जा सकती।

महर्षि दयानन्द एक अत्यन्त मार्मिक सूत्र देते हैं। ऋषि का हृदय उस सूत्र में बन्द है। अंग्रेजी भाषा में एक अत्यन्त प्रिय Idiom है, Wedded to इसका भाव बड़ा सारगर्भित व सुललित है। यथा He is wedded to his mission महर्षि के लिए भी एक अंग्रेजी लेखक ने ऐसा वाक्य लिखा है। आजन्म ब्रह्मचारी अपने लक्ष्य से विवाहित था। भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के प्रभाव से यह प्रयोग चल पड़ा है परन्तु महर्षि अंग्रेजी नहीं जानते थे। मैं चकित रह गया कि ऋषिवर ने भी ठीक ऐसा ही प्रयोग किया है।

ऋषिवर प्रभु से उसकी 'आज्ञा का प्रणय' मांगते हैं। इसको अंग्रेजी में इस प्रकार लिख सकते हैं Wedded to Divine Will. महर्षि के इस भाव को हम किन शब्दों में व्यक्त करें। यह लिखने की बात नहीं। यह समझने का विषय नहीं, यह अनुभव की वस्तु है। ऋषि के शब्दों को शब्द मत समझें, इसमें ऋषि के आत्मा के दर्शन करें।

विषपान कर ऋषि बलिदान पथ के राही बने। महाप्रयाण की वेला है। ऋषि शरीर का त्याग करते हुए 'ईश्वर की आज्ञा का प्रणय' का मूर्त्त रूप प्रस्तुत करते हैं। "प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।" ऋषि ने लिखा है कि गद्-गद् होकर परमात्मा को मित्रता के लिए पुकारें। रो-धोकर पाप-ताप में ईश्वर को लोग पुकारते हैं। महर्षि दयानन्द तो आरती (आरत-

दुखिया की पुकार) की अवस्था को एक सामान्य स्तर समझते हैं। वह तो जिज्ञासु व ज्ञानी की स्थिति से भी आगे की स्थिति अपने शब्दों में और अपने महाप्रयाण में प्रस्तुत करते हैं।

ऋषि की अमृतधारा का रसपान कीजिए। उसकी कसौटी पर अपने को कसिए। ऋषि लिखते हैं कि स्तुति, प्रार्थना व उपासना भी ईश्वर की कृपा का फल है। जिसका मन संध्या, हवन आदि में रुचि नहीं रखता, इसका सीधा अर्थ यही है कि उस पर ईश्वर की कृपा नहीं है। कृपालु प्रभु की कृपा वृष्टि हो रही है और वह अभागा इससे वञ्चित है। रंगे कपड़े वाले भी 'सन्ध्या हवन एण्ड कम्पनी' आदि अपशब्दों का आर्यसमाज के लिए प्रयोग करते रहे हैं। अब भी बस चलता है तो यही कुछ कहते हैं। ये अभागे क्या जाने कि प्रभु-कीर्तन का रस क्या है।

ऋषि ने मुन्शीराम को यही तो कहा था कि तेरी शंकाओं को निर्मूल करने का आश्वासन दिया था, तेरे उर में ईश्वर के विश्वास की ज्योति जगाने की बात मैंने नहीं कही थी। यह तो परमेश्वर की कृपा से ही सम्भव हो सकेगा। वह दिन भी आ गया। ईश्वर के कृपा-कटाक्ष से मुन्शीराम श्रद्धानन्द बन गये। यदि हम स्तुति, प्रार्थना, उपासना में रुचि नहीं रखते तो समझ लीजिए कि हम अभागे हैं। ईश्वर की कृपा हम पर नहीं है। उसकी कृपा के पात्र बनिए। पात्रता की प्रथम अट (Condition) प्रभु की आज्ञा को जानना व मानना है। महर्षि की अमृत धारा में आओ डुबकी लगाओ।

परमकृत्य सन्ध्योपासना

वैदिक अध्यात्म सुधा का पान करने के लिए महर्षि दयानन्द के जीवन के दो प्रेरक प्रसंग सदैव स्मरण रखिए। जीवन का बेड़ा पार होने में तनिक भी सन्देह न रहेगा।

महाराज उत्तरप्रदेश में वेद ज्ञान की निर्मल गंगा बहाते हुए मिर्जापुर पधारे। आर्यसमाज स्थापना से पांच वर्ष पूर्व की घटना है। सन्ध्या का समय होने वाला था। कुछ श्रद्धालु ऋषि जी के चरणों में बैठे थे। योगेश्वर दयानन्द

ने भक्तों से कहा, सब काम छोड़कर परमकृत्य सन्ध्योपासना एकांत में करनी चाहिए।"

शृंगार करो रे मन का

उसी समय की एक और घटना है। कुछ आचार्य महर्षि के साथ बातचीत कर रहे थे। ऋषि जी ने उनसे कहा, "मस्तक शृंगार (तिलक लगाने) से अच्छा यह है उपासना द्वारा उत्तम शृंगार करो, ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं? यह तुमने कैसी माया रची है?" जब इन आचार्यों ने कुछ उत्तर न दिया तो प्रभु सुत दयानन्द बोले, शोक 'महाशोक' तिलक आदि चिन्ह बनाने में लोगों की रुचि है, योगाभ्यास में किसी की भी नहीं है।

जब महाराज ने ये शब्द कहे तभी ये शब्द भी कहे, "मूर्ख! जब तक तू तिलक लगाता रहा, इतने समय तक गायत्री मन्त्र का जप क्यों न कर लिया; व्यर्थ समय नष्ट किया।"

सदाचरण प्यारा है—आत्मोन्नति तभी होगी जब हम ऋषि-आज्ञा को शिरोधार्य करके उपासना को परमकृत्य जान व मान कर इसमें प्रवृत्त होंगे। आज व्यक्ति व समष्टि जीवन दूषित व अशान्त है। चर्चा सिद्धान्त व आदर्शों की, की जाती है और स्वार्थ सिद्धि के लिए Unholy Alliances (अपवित्र सिद्धांतहीन सांठ-गांठ) यत्र-तत्र सर्वत्र देखने को मिलते हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने एक पत्र में लिखा है—"चाहे कोई हो जब तक मन में न्यायाचरण देखता हूं, मेल करता हूं और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है फिर उससे मेल नहीं करता इसमें हरिश्चन्द्र हो व अन्य कोई।"

महर्षि को सदाचरण प्यारा है। इसी प्रयोजन से "व्यवहार भानु" लघु-ग्रन्थ से विश्व को आलोकित किया। महर्षि के उपरोक्त वाक्य को पढ़िए और कृत संकल्प होकर निकलिए।

यह जग में हुंकार गुञ्जाओ, 'हम सुधरेंगे जग सुधरेगा।'

यह कल्याण मार्ग है। वेद की घोषणा है—

नान्य : पन्था—यही मार्ग है और कोई नहीं।

पात्रता—पवित्रता

महर्षि दयानन्द ने सत्य का प्रकाश करते हुए दो अद्भुत घोषणायें कीं। ये घोषणायें नई थीं परन्तु सनातन सत्य था। ऋषि ने अपने योगबल, विद्याबल से इस सनातन सत्य का साक्षात्कार करके इसे विश्व के सामने रखा। ये दो घोषणायें क्या थीं ?

१. आत्मा कभी भी परमात्मा नहीं बन सकता।

२. परमात्मा कभी भी आत्मा नहीं बन सकता। ये सत्य हमारे सामने रखकर ऋषि ने जीव को अहंकार से बचा लिया और परमात्मा को अपमान से, निरादर से बचा लिया। जीव स्वयं को सच्चिदानन्द परमात्मा माने, क्या यह अहंकार व असत्य नहीं ? अहंकार व असत्य भाषण पतन का कारण बनता है। सर्वत्र को एकत्र बना देना, क्या यह ईश्वर का निरादर नहीं ? परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है, उसको अल्पज्ञ और पाप-ताप से पीड़ित मनुष्य का रूप देना, क्या ईश्वर का अपमान नहीं ? अवतारवाद क्या है ? सर्वज्ञ को अल्पज्ञ बनाना और सर्वत्र को एकत्र बनाना। किंवा अल्पज्ञ को सर्वज्ञ बताना और एकत्र को सर्वत्र समझना।

ऋषि की एक और घोषणा है। जीव ईश्वर तो नहीं बन सकता परन्तु ईश्वर के गुणों को धारण कर सकता है। यथा दयालु, कृपालु, न्यायप्रिय तो हो सकता है। जीव में ईश्वर के तीन गुण नहीं आ सकते। जीव सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापक नहीं बन सकता।

परमकृत्य— महर्षि की यह भी घोषणा है कि सृष्टि का कर्त्ता सृष्टि से दूर नहीं। "वह (परमेश्वर) हममें है और हम उसमें हैं।" वह हमारे अन्दर है, हम उसके अन्दर हैं। वेद के सद्ज्ञान से विमुख मानव-समाज इस भ्रान्ति की बीच बीच फंस कर रह गया कि परमात्मा संसार से दूर कहीं इतरलोक (यथा क्षीर सागर) में रहता है। ऋषि ने बताया कि आत्मा परमात्मा का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है। परमात्मा की उपासना को महर्षि ने परम कृत्य बताया है, पाप से बचने का उपाय ईश्वर की उपासना लिखा है।

ईश्वर के निकट हम कैसे जावें ? यह एक समस्या है। महर्षि दयानन्द किंवा वैदिक धर्म का यह सिद्धान्त है कि ईश्वर के निकट जाने से अथवा उस की उपासना से क्या होगा ? ऋषि कहते हैं, परमात्मा की कल्याणी वाणी वेद कहती है कि उपासना से पवित्रता मिलेगी, शुद्धता मिलेगी। आनन्द घन की प्राप्ति का यह लाभ ही सर्वोत्तम है। मलीनता से छुटकारा हो जावे, पाप-ताप से हम मुक्त हो जावें, आनन्द की प्राप्ति हो, यही तो जीवन का परम लक्ष्य है।

उपासक के जीवन के दो सिर हैं। पहला सिरा है पात्रता और दूसरा सिरा है पवित्रता। पात्रता को आप आध्यात्मिक जीवन का मूल समझें और पवित्रता को जीवन का फूल समझें। पात्रता व पवित्रता का वैदिक अध्यात्म-वाद में वह सम्बन्ध समझिए जो आचार्य दयानन्द ने दया व न्याय का बताया है। इस दृष्टि से पात्रता-पवित्रता है और पवित्रता-पात्रता है।

पात्रों का धर्म—वैदिक धर्म में पात्रता व पवित्रता पर बल दिया जाता है।' वैदिक धर्म में वही पार होगा, जो पवित्र है, जिसने अपने आपको पात्र बनाया। वैदिक धर्म यज्ञ का धर्म है, यह याजकों का धर्म है। यज्ञ कर्म बिना पात्रों के हो ही नहीं सकता। यज्ञ-हवन के लिए पात्र चाहिए। बस, 'पात्र चाहिए' अन्यथा यज्ञ न होगा। प्रभु-प्राप्ति की इच्छा करने वाले भी समझ लें "प्रभु जी मेरे अवगुण चित्त न धरो" यह राग अलापने से कुछ न बनेगा। व्यक्ति और समाज का सुधार व उपकार तभी सम्भव है, जब श्रेष्ठ बनने की चाह जागे। भलाई के लिए उत्साह हो। दुर्गुणों के त्याग की होड़ लगे, पवित्र बनने के लिए परस्पर स्पर्धा हो। स्मरण रखिए वैदिक धर्म पाप से बचाने की गारण्टी देता है, पाप के फल से बचाने की यहाँ कोई गारण्टी नहीं। महर्षि शुचिता, शुद्धता, पात्रता व पवित्रता पर बल देते हुए एक पत्र में लिखते हैं कि संसार में सब पदार्थों का मिलना सुलभ है परन्तु, शुद्ध मनुष्य का मिलना दुर्लभ है। आज जनसंख्या बढ़ रही है फिर भी मनुष्यों का तो अकाल है। वैदिक धर्म के आत्मोन्नति के सिद्धान्त का एक सुन्दर उदाहरण हमें रक्त साक्षी पं० लेखराम जी के जीवन की एक घटना में मिलता है।

प्रचार-यात्रा करते हुए पं० जी जालन्धर पहुंचे। आगे कहीं शीघ्र पहुंचना था। वस्त्र धोने का अवकाश न मिला। पास दो जोड़े ही रखते थे। शीत आरम्भ हो गई। कोट तब पास नहीं था। मित्र मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी) से एक कुर्त्ता मांगा ताकि यात्रा में ऊपर नीचे दो कुर्त्ते पहनकर सर्दी से बचाव किया जा सके। पं० जी ने मित्र का धुला कुर्त्ता नीचे पहन लिया और अपना एक मैला कुर्ता ऊपर पहन लिया। यह देखकर मुन्शीराम जी ने कहा, "पं० जी आपने यह क्या कर दिया? धुले कुर्ते का फिर क्या लाभ? मैला नीचे पहनें और धुला हुआ ऊपर करें।" यह सुन कर पं० जी ने कहा वैद्यक शास्त्र के नियमानुसार मेरे शरीर के साथ धुला वस्त्र ही होना चाहिए। मैला मुझे रोगी बना देगा। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि लोग मेरे मैले कुर्ते को देखकर क्या कहेंगे। मुझे यह सन्तोष है कि मेरे शरीर को मैल से हानि नहीं पहुंच सकती।

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी कहा करते थे कि पं० जी की यह घटना कोई साधारण सी बात नहीं। यह बहुत बड़ा उपदेश है। यही धर्म का मर्म है वैदिक अध्यात्मवाद का यह सरल परन्तु गम्भीर उपदेश है। अन्दर हमारे क्या है...? इसका बहुत बड़ा महत्त्व है। प्रश्न प्रवृत्ति का है। बुराई, नेत्र, नाक, कान, हाथ आदि नहीं करते। मन में शुद्धता है तो सब कुछ ठीक हैं। इस शुद्धता से ही पात्रता प्राप्त होगी।

आनन्द स्रोत वह रहा पर तू उदास है।
अचरज ये जल में रहके भी मछली को प्यास है॥
टुक ज्ञान-चक्षु, खोल के तू देख तो सही।
जिसको तू ढूंढ़ता वो सदा तेरे पास है।
कुछ तो समय निकाल आत्मशुद्धि के लिए।
नरजन्म का उद्देश्य न केवल विलास है॥

—कविरत्न 'प्रकाश'

व्यक्तित्व का विकास

आज के युग में जिन शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है, 'विकास' शब्द भी उनमें से एक है। समाजशास्त्री, इतिहास, साहित्यकार, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ आदि इसका प्रयोग करते ही रहते हैं विकास शब्द के पारिभाषिक अर्थ क्या हैं ? इस चर्चा से बचते हुए हम इसके सर्वमान्य अर्थों को लेकर अपने विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगे। सीधे रूप में इस शब्द को 'उन्नति' के अर्थ में ही लिया जाता है। संसार में जड़ वस्तुयें अथवा जड़ पदार्थ तो किसी प्रकार की उन्नति या विकास नहीं करते। विकास का सम्बन्ध तो 'चेतन' से ही है। एक मेज न विगड़ सकता है, न सुधर सकता है, न भला बन सकता है न बुरा, न किसी का कुछ बना सकता है और न किसी का अहित कर सकता है।

चेतन सत्ता जड़ पदार्थों का उपभोग, उपयोग, प्रयोग करती है। चेतन के द्वारा ही जड़ की स्थिति में परिवर्तन आता है, चेतन जीव जड़ लड़की से मेज, कुर्सी कुछ भी बनाये, जैसी चाहे बना ले। परन्तु चेतन के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कह सकते। चेतन में भी एक बड़ा भेद है। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होने के कारण परमेश्वर तो पूर्ण है, परमानन्द है, अतः सच्चिदानन्द जगदीश्वर के भी विकास का अथवा उन्नति का प्रश्न नहीं उठता। वह एकरस है। उसके भी सुधरने और बिगड़ने का प्रश्न नहीं उठता।

चेतन प्राणियों के विकास के उदाहरण पशुजगत्, पक्षियों तथा वनस्पतियों में हम नित्य देखते हैं। माली जिस पेड़ को ठीक खाद देता है, समय पर पानी देता है, शाखाओं की उपयुक्त समय पर कांट-छांट करता है, वह पेड़ पूर्ण रूप से विकसित होता है। बाग में उगे तथा मार्ग में अपने आप उगे पेड़ में अन्तर स्पष्ट है।

डार्विन के विचार के पोषक जन इस भ्रम में हैं कि संसार में विकास ही होता है। इस भ्रमोच्छेदन के लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि यदि ऐसा

होता तो फिर नैतिक उपदेश देने की आवश्यकता ही न होती। हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि पर्वतीय लोग, हिमाचल के भोले-भाले बंधु पहले चोरी-चकारी का नाम तक न जानते थे, परन्तु जब से 'सभ्यता' व 'विकास' की रट लगाने वालों से उनका सम्पर्क विशेष बढ़ा तो पहाड़ों में भी परस्पर अविश्वास, झूठ, चोरी, छल-कपट सब दुर्गुण फैल गये।

विचारणीय विषय यह है कि मानवीय व्यक्तित्व का विकास कैसे हो? पशु-पक्षियों का तो चरित्र और व्यक्तित्व होता नहीं, उनसे नैतिकता, कर्त्तव्य व शिक्षा, विद्या का सम्बन्ध नहीं। इनके शरीर का विकास तो किया जा सकता है। इन्हें कुछ प्रशिक्षित भी किया जा सकता है। इनके प्रशिक्षण की फिर आगे एक सीमा है। सर्कस का हाथी, सर्कस का बन्दर अथवा टाँगे का का घोड़ा···अपनी सन्तान को अथवा किसी दूसरे हाथी, बन्दर अथवा घोड़े को प्रशिक्षित नहीं कर सकता। जो सीखा हो, सो नहीं सिखा सकता। यह शक्ति तो केवल मनुष्य जाति को ही प्राप्त है।

हमने विकास को उन्नति का समानार्थक माना है। यह शब्द अपने आप में समस्या का समाधान करने में समर्थ है, उन्नति है क्या? उत्+नत अर्थात् ऊपर उठने व झुकने का नाम उन्नति है। भाव स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए विनीत बन कर, कुछ झुक कर गुणियों से, बड़ों से सीखिए। अहंकारी न कुछ सीख सकता है और कुछ आता भी हो तो अपने अभिमान के कारण फिसलेगा, गिरेगा, पतनोन्मुख होगा।

प्राचीन भारत के ऋषियों ने व्यक्तित्व के विकास के लिए हमारे सामने एक सर्वमान्य सिद्धांत (Universal Truth) रखा है। हमारे यहां जीवन विकास की नींव यम और नियम पर रखी गई है। यम भी एक प्रकार से नियम ही है। एक व्यक्तिगत नियम है और एक सामाजिक नियम है। इनका पालन करने से प्रत्येक व्यक्ति विकसित होगा और प्रत्येक राष्ट्र विकसित होगा। सब प्रकार से व्यक्तित्व का विकास होगा। सर्वाङ्गीण उन्नति (all-round development) का यह आर्ष घोषणा-पत्र है। इसका देश-काल की सीमा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक बात और स्मरणीय है। वैदिक दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् तथा कई भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्यकार आचार्य चमूपति जी ने एक बड़ी सुन्दर बात लिखी है कि भारत में नियम पालन से व्यक्ति बड़ा बनता है, अन्य देशों में नियम तोड़ने से बड़ा बनता है या बड़ा माना जाता है। वेद में सत्य व ऋत की बड़ी महिमा है। ऋत शब्द से ही अंग्रेजी का Right (ठीक, सच्च) बना है। Right में G तथा H तो मौन हैं शेष तो RIT ही रहता है। ऋत क्या है? व्यवस्था या सृष्टि नियम का दूसरा नाम ऋत है।

ऋषियों, महर्षियों के लिए भी 'समर्पण भाव' 'प्रभु तेरी इच्छापूर्ण हो' अर्थात् ईश्वर के सृष्टि-नियमों का पालन व आदर परमावश्यक है। यहां ईश्वर के नियम का उल्लंघन करके चमत्कारी बनने की होड़ नहीं। यहां न कोई चांद को तोड़ सकता है और न कोई पर्वत को उठा या हिला सकता है। यहां ईश्वर किसी ऋषि के वश में नहीं है। सारा विश्व उस प्रभु के वश में, उसके नियमों में बंधा हुआ है। ईश्वर भी जीव को अपनी 'व्यवस्था के पराधीन' फल देता है। जैसे चाहे वैसे कर्म-फल नहीं दे सकता।

इसलिए महर्षि पतञ्जलि ने व्यक्तित्व के विकास के लिए यम-नियम की बात कही है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान ये पांच नियम हैं। इन नियमों को हमने ऊपर व्यक्तिगत कर्त्तव्यों की संज्ञा दी है। इनमें से किसी की व्याख्या की तो विशेष आवश्यकता नहीं तथापि 'सन्तोष' के बारे में किसी को भ्रांति न रहे इसलिए सब को जान लेना चाहिए कि भारतीय दर्शन में कुछ न करने-धरने का नाम सन्तोष नहीं है। प्रमाद व अकर्मण्यता का नाम सन्तोष नहीं है। महर्षि दयानन्द ने तो ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ग्रन्थरत्न में सन्तोष को 'अत्यन्त पुरुषार्थ' बताया है और पुरुषार्थ के, उद्योग के, चाणक्य के अनुसार चार भेद 'व्यवहारभानु' में दिये हैं।

तप के बारे में भी भ्रान्तियां हैं। महात्मा हंसराज तो तप पर सदैव बड़ा बल दिया करते थे। तप से कच्ची ईंट पक्की बनकर अधिक मूल्यवान् है क्योंकि वह अधिक तपी हुई है। व्यक्ति-जीवन में भी तप का यही स्थान है। रूजवेल्ट लंगड़ा था परन्तु अमरीका का राष्ट्रपति बन गया। बायरन कवि लंगड़ा था

परन्तु बढ़िया तैराक बन गया, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति का बचपन से एक ही फेफड़ा था परन्तु वह बढ़िया तैराक, बढ़िया खिलाड़ी व उत्तम साहित्यकार, निर्भीक पत्रकार व मनीषी बने। इसका मुख्य कारण तप ही तो था।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पांच यम हैं, सामाजिक कर्त्तव्य हैं, अनुशासन हैं। सब जीवन की सुरक्षा चाहते हैं। यदि सब अहिंसा के कर्त्तव्य का पालन करें तो सबका जीवन सुरक्षा का एक मौलिक अधिकार (Fundamental Right) सुरक्षित हो गया या मिल गया। सब चाहते हैं हम ठगे न जावें, यदि सब सत्य बोलें तो लेन-देन में ठगे जाने का भय दूर हो गया। ऐसे ही सब अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा चाहते हैं। यदि अस्तेय को मौलिक कर्त्तव्य ((Fundamental Duty) मान कर चलें तो सम्पत्ति का अधिकार भी सुरक्षित हो गया। संसार में मान की रक्षा सब चाहते हैं। यदि ब्रह्मचर्य व्रत, संयम के मौलिक कर्त्तव्य का पालन करें तो एक और मौलिक अधिकार सुरक्षित हो गया।

जमाखोरी (hoarding) के कारण समाज में दुःख व्याप्त होता है। इसे शोषण की जननी भी कहा जाता है। अपरिग्रह के महाव्रत के पालन से संग्रह (hoarding) के अभिशाप से सब नागरिक सुरक्षित हो जाते हैं। आज मौलिक अधिकारों के पालन की दुहाई पर बल है। पतञ्जलि महामुनि ने दूसरों के अधिकारों के सम्मान को यम की संज्ञा दे दी। इसे हम सामाजिक कर्त्तव्यों की सूची कह सकते हैं। व्यक्तित्व के विकास का यही राजमार्ग है। व्यक्ति व समाज दोनों का विकास, उत्थान व उन्नति इसी से सम्भव है। सर्वाङ्गीण कल्याण की यही विधि है। यह विश्व का प्रथम विधान है। 'व्यक्तित्व के विकास' के सम्बन्ध में भारतीय व पश्चिमी दृष्टिकोण में एक बहुत बड़ा अन्तर है। पश्चिम में व्यक्ति को निजी, व्यक्तिगत व सार्वजनिक (Private and Public Life) दो भागों में विभक्त किया जाता है। भारत के राजनीतिज्ञ भी आज इस मत के पोषक हैं क्योंकि इसी से उनकी स्वार्थसिद्धि होती है। हमारे पूर्वजों को यह दृष्टिकोण अमान्य था। किसी विद्वान् ने बड़े सुन्दर शब्दों में में लिखा है—

"He who acts wickedly in 'Private Life' can never be

expected to show himself noble in public conduct, for it is not the man, but only the place that is changed."

अर्थात् व्यक्तिगत जीवन में खोटे कर्म करने वाले से सार्वजनिक जीवन में श्रेष्ठ व पवित्र आचरण की आशा नहीं की जा सकती कारण, इससे व्यक्ति नहीं, प्रत्युत केवल स्थान में परिवर्तन हुआ है।

आशा है 'व्यक्तित्व के विकास' की चर्चा करते हुए हम लोग इस तथ्य को दृष्टि से ओझल नहीं करेंगे।

यह अनादि नित्य नाद

सेवा, सहयोग व सहायता—यह एक अनादि घोष हैं। चेतन जगत् को ही सेवा, सहयोग व सहायता का त्रिसूत्री कार्यक्रम अथवा ये तीन नियम अपनाने की आवश्यकता नहीं—जड़ जगत् भी इन तीन में से एक के बिना बेकार है। वैसे तो जड़ वस्तुयें अपनी जड़ता के कारण न तो किसी की सेवा कर सकती हैं, न ही किसी को सहयोग दे सकती हैं और न ही किसी की सहायता कर सकती हैं तथापि यदि हम सहयोग को व्यापक अर्थों में लें तो प्रकृति के कण-कण का परस्पर मेल परस्पर सहयोग ही तो है। परमाणुओं के परस्पर जुड़ने व निकट आने से ही सृष्टि का सृजन होता है। विधाता का विधि विधान ही ऐसा है कि अग्नि, जल, वायु आदि के परस्पर सहयोग से ही विश्व चल रहा है। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र व तारागण भी एक अदृश्य नियम में बंधकर सहयोग करते हैं। विश्व इतिहास में तारों के परस्पर टकराने का कोई उदाहरण है ? इससे स्पष्ट है कि सहयोग इस ब्रह्माण्ड का अनादि नियम है।

उपरोक्त तीन नियम सृष्टि के आधारभूत सिद्धांत हैं। जब से यह जगत् है तभी से ये तीन घोष सुनाई दे रहे हैं। जिस दिन इन तीनों को मानव समाज पूर्णतया तिलाञ्जलि दे देगा, उसी दिन इस विश्व का कार्य ठप्प हो जावेगा।

एक और बात हमें समझ लेनी चाहिए कि ये त्रिसूत्री कार्यक्रम अथवा ये तीन नियम पशु-पक्षी भी किसी न किसी रूप में कुछ सीमा तक अपनाते हैं। नैतिकता, अनैतिकता का प्रश्न मनुष्यों से सम्बन्ध रखता है, पशुओं से नहीं परन्तु फिर भी आप देख सकते हैं कि गाय, बकरी, हाथी परस्पर सहयोग करते है। परस्पर सेवा व सहायता भी करते हैं। अबोध पक्षी अपने शिशु के मुख में दाना दुनका देता है। यह क्या कम सेवा है ? एक पक्षी मर जावे तो उसके साथी उसके लिए शोर मचाते, उसके शव को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

यह क्या है ? परस्पर सहयोग, सहायता व सेवा की ही अभिव्यक्ति है। एक गली में किसी कुत्ते को आप मारें तो कई कुत्ते आपको काटने के लिए दौड़ेंगे। यह क्या है ? इन तीन नियमों का प्रकाश है।

मनुष्य का बड़प्पन

बड़प्पन की कसौटी क्या है। अपने लिए, परिवार के लिए तो सब जीते हैं परन्तु इन घेरों से निकल कर जो जन औरों के लिए जीते व मरते हैं, उन्हीं को संसार में बड़ा कहाने का गौरव प्राप्त हुआ है। दूसरे शब्दों में हम जिन्हें त्यागी कहते हैं वे सेवा व्रत के धनी, सहयोग व सहायता करने में सदा अग्रणी रहने वाली विभूतियां ही तो थीं। सेवा, सहयोग व सहायता को जितना व जिस सीमा तक हम जीवन में अपनाएंगे उतना ही बड़प्पन हमें प्राप्त होगा।

अपने सीमित क्षेत्र में भी इस त्रिसूत्री कार्यक्रम का हम परीक्षण कर सकते हैं। भारत के स्वाधीनता संग्राम में एक साधु वायसराय के आदेश से बन्दी बनाया गया और वह थे स्वामी स्वतन्त्रानन्द। स्वामी जी इस अनादि घोष पर बोलते हुए एक दृष्टान्त दिया करते थे कि किसी ग्राम में रामसिंह नाम का एक भद्रपुरुष रहता था। वह अच्छा खाता-पीता सज्जन था। किसी भी निर्धन पुत्री का विवाह होता तो बिना जान-पहचान वाले ऐसे व्यक्ति को भी वह आर्थिक सहायता देकर सहयोग करता। उसकी बहुत कीर्ति फैली। उसके ग्राम से कहीं दूर के एक निर्धन की पुत्री का विवाह जब निकट आया तो वह निर्धन बड़ा चिन्तित हुआ कि क्या करूं ?

किसी ने उसे रामसिंह का पता दिया। वह पूछता-पूछता उसके ग्राम की ओर चल पड़ा। मार्ग में एक घुड़सवार से रामसिंह के ग्राम का पता पूछा तो उसने कहा उससे क्या काम है ? उसने काम बता दिया। घुड़सवार ने उसे तत्काल एक सौ रुपया दे दिया। तब एक सौ रुपया बहुत बड़ी राशि थी। यह घुड़सवार व्यक्ति ही रामसिंह था। इसकी दूसरी विशेषता यह थी कि जब कोई रुपया लौटाने जाता तो यह कहा करता था तुम यह राशि अपने जैसे किसी और व्यक्ति को आवश्यकता के समय देना और यह कहना कि वह आगे किसी

ऐसे व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर ऐसे ही सहयोग करे। इस प्रकार रामसिंह ने सेवा, सहयोग व सहायता का एक विस्तृत यज्ञ रचा दिया। वह कहा करता था जब अपना कार्य पूरा हो जाने पर किसी ने मेरा धन आगे किसी पात्र को दे दिया तो मेरा रुपया मेरे पास लौट आया। न जाने इस प्रकार रामसिंह ने कितने परिवारों का कल्याण किया। यही सेवा है, यही सहयोग है, यही सहायता है। वास्तव में ये तीनों शब्द ऐसे ही पर्याय हैं जैसे दया व न्याय। ईश्वर हमारे कर्मों का यथावत् फल देता है, यही उसकी न्याय-व्यवस्था है और वह न्याय करता है, क्या यह उसकी कम दया है ?

इस धरती पर बड़े-बड़े सेवक हुए हैं। अंग्रेजी शासनकाल में मुलतान (पाकिस्तान) में प्लेग नाम का विनाशक रोग फैला। अमरीकन पादरी स्टोक्स वहां डाक्टरों का दल लेकर सहायता को पहुंचा। महात्मा हंसराज ने आर्य समाज के स्वयंसेवकों को भेजा। एक घर में एक रोगी का प्लेग का फोड़ा पककर चमक रहा था। यह निश्चित था कि यदि उसका फोड़ा चीरा न गया तो वह कुछ ही मिनटों में मृत्यु का ग्रास बन जावेगा। महात्मा हंसराज के भेजे दीन सेवक श्री पं० रुलियाराम ने डा० को कहा कि फोड़ा चीर दो। डाक्टर के पास (संयोग ऐसा हुआ) चाकू-छुरी न थी। पं० रुलियाराम जी ने अपने दांतों से फोड़ा चीरा, काटा, चूसा व थूका। अपने मुंह को औषधि से शुद्ध कर लिया। प्लेग जैसी महामारी में ऐसा साहस कर दिखाना क्या चमत्कार नहीं है ? पादरी स्टोक्स ने यह दृश्य अपनी आंखों से देखा। वह रुलियाराम के भक्त बन गये। बाद में यही पादरी स्टोक्स स्वामी सत्यानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। हिमाचल प्रदेश में सेबों की खेती के विकास में इनका विशेष योगदान रहा है।

एक बार कहीं अन्यत्र महामारी के समय एक रोगी को कहीं पहुंचाना था। कोई उठाने ले जाने वाला न था। पं० रुलियाराम ने उसे स्वयं ही उठा लिया। यह देखकर पादरी स्टोक्स दंग रह गए। आगरा विश्वविद्यालय के एक पूर्व उप कुलपति डा० दीवान चन्द ने लिखा है कि रोगी रुलियाराम पर वमन भी कर देता था परन्तु उसको इस वीभत्स दृश्य को देखकर भी घृणा या ग्लानि नहीं होती थी।

ऐसा नहीं है कि ऐसी विभूतियां अतीतकाल में ही हुई हैं। दीनानगर (पंजाब) के वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को इन पंक्तियों के लेखक ने असहाय रोगियों का मलमूत्र उठाते देखा है। यह उनके लिए अपवाद की बात नहीं। यह उनके जीवन का एक सामान्य व्यवहार है। आयुर्वेद में 'सहस्रपुटी अभ्रक भस्म' नाम की एक औषधि होती है। यह पन्द्रह वर्ष पुरानी होने पर अत्यधिक मूल्यवान् हो जाती है। एक किलो का मूल्य ३०००० तीस हजार होता है। निर्धन इसे नहीं ले सकते। स्वामी सर्वानन्द जी से एक बार किसी ने मूल्य से मांगी तो उन्होंने कहा कि सेठ तो कहीं से ले लेंगे। निर्धन कहां से लेंगे? वह इसे निर्धनों को निःशुल्क (Free) ही देते हैं। वैसे यह किसी विरले वैद्य के पास ही मिलती है। सेवा धन के ऐसे धनी, ऐसी विमल आत्माएं ही मनुजता का मान हैं। ईश्वर करें कि दिखावे, आडम्बर से ऊपर उठकर हम लोग सत्ता व सम्पत्ति पूजन के भाव से बचकर मानव मात्र की सेवा में जुटें। सेवा, सहयोग व सहायता का अनादि नाद हमारे हृदयों में निनादता रहे। हम इस त्रिसूत्री कार्यक्रम को अपने दैनिक व्यवहार का रूप दें।

सनातन धर्मी कहते हैं
ऋषि दयानन्द के वचन सत्य हैं

ऋषि दयानन्द जी महाराज प्रथम भारतीय महापुरुष व सुधारक विचारक थे, जिन्होंने देश के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में घूम-घूम कर देश सुधार, वेद प्रचार व दलितोद्धार का विराट जन आन्दोलन आरम्भ किया। महर्षि दयानन्द से पूर्व किसी देशभक्त, किसी साधु-संन्यासी, विद्वान् महात्मा ने देश के सब भागों में भ्रमण करके धर्म प्रचार व राष्ट्र रक्षा का कोई आन्दोलन चलाया हो, ऐसा दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। बहुत प्राचीन काल की बात नहीं करते। वैसे तो देशाटन व तीर्थ यात्रा की भारतीयों को कई शताब्दियों से सुरुचि रही है। सन्त-महात्मा भी देश में भ्रमण करके उपदेश देते रहे हैं, परंतु महर्षि दयानन्द हमारे इतिहास की प्रथम विभूति हैं, जिन्होंने देश की चारों दिशाओं में जाकर ईश्वर की पवित्र कल्याणी वाणी वेद का सन्देश देते हुए जन जागरण का शंख फूंका।

दुर्भाग्य से वे लोग भी उनका घोर विरोध करने लगे, जिनके कल्याण के लिए ऋषि ने सब सुख-साज वारा था। ऐसे लोगों ने ऋषि की जान लेकर भी चैन न लिया और आज पर्यन्त ऋषि को गालियां देकर, ऋषि का विरोध करके प्रसन्न होते हैं। उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में ऋषि के विरोध में 'धर्म सभा' नाम से एक संस्था खड़ी की गई। इस संस्था की स्थापना का एक कारण यह था कि ऋषि जी ने रण्डीबाजी व अगलामबाजी करने वालों की भर्त्सना की थी। अदूरदर्शी विरोधियों ने ऋषि के मिशन का विरोध करने के लिए सनातन धर्म सभाएं व धर्म महामण्डल स्थापित किए। इन मण्डलों व इन सनातन धर्म सभाओं ने इस्लाम, ईसाइयत व रामकृष्ण की निन्दा करने वाले अन्य मतों के खण्डन में आज तक एक भी पुस्तक नहीं लिखी। आर्य

समाज व ऋषि के विरोध में सैकड़ों पुस्तकें छापी गई हैं। इस प्रवृत्ति को हम आत्मघात ही कहेंगे।

सौभाग्य की बात है कि समझदार सनातन धर्मी अपनी भूल को सुधार कर सत्य को स्वीकार करते जा रहे हैं। सनातन धर्म के बड़े-बड़े विद्वान्, उपदेशक, आचार्य व नेतागण जानने-मानने व पहचानने लगे हैं कि आर्यसमाज ऋषि मुनियों व राम-कृष्ण की लुटती लाज का रक्षक है। आर्यसमाज ही हिन्दू जाति को बचाता रहा है, बचा सकता है व बचायेगा। आर्यसमाज व ऋषि की विचारधारा को अपनाए बिना विश्व का विशेष रूप से हिन्दू का कल्याण नहीं। ऋषि की एक-एक बात को सनातन धर्म जगत् निःसंकोच सत्य मानने लगा है। प्रो० शरर जी ने सत्य ही लिखा है—

तीरा ओ तार गुजरगाहों पै नूर आएगा।
इनक्लाब आएगा आएगा जरूर आएगा॥

अन्धकार छट कर रहेगा और वेद विद्या का सूर्य अपने प्रचण्ड तेज से संसार को आलोकित करेगा। आइए, सुनिए, सनातन धर्मी क्या कहते हैं— सनातन धर्म महामण्डल के एक संस्थापक नेता स्व० पं० दीन दयाल जी व्याख्यान वाचस्पति से जब रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी ने करनाल में यह कहा कि इसी प्रकार हिन्दू विधर्मी होते गए तो राम-कृष्ण सन्तान का क्या बनेगा तो पं० दीन दयाल जी ने तत्काल कहा, पं० लेखराम सरीखा प्राणवीर जिस जाति का रक्षक हो, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, इसलिए हम चिन्ता क्यों करें।

काशी की विद्वन्मण्डली के प्रधान व मन्त्री रह चुके देश के मूर्धन्य सनातनी विद्वान् दर्शनकेसरी स्व० गोपाल शास्त्री जी ने व्यवहार भानु ऋषि कृत पुस्तिका का संस्कृत अनुवाद किया है और दयानन्द दर्शन पर सुन्दर श्लोक रचना की है। आपने ऋषि जी के वेद भाष्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

आर्यसमाज कहता रहा है कि स्त्रियों को भी वेद पढ़ने व यज्ञोपवीत का अधिकार है। डा० राधा कृष्णन जी ने Religion and Society पुस्तक में आर्यसमाज की इस मान्यता की पुष्टि करते हुए श्रुति का वही प्रमाण दिया है जो ऋषि ने दिया है।

पं० शिवदत्त शास्त्री महामहोपाध्याय ने प्रबल शब्दों में कन्याओं के यज्ञोपवीत की पुष्टि की। पं० मदन मोहन मालवीय जी ने कहा था "स्त्री शिक्षा के बिना भारत की उन्नति सम्भव नहीं।"

शुद्धि का सनातनी डटकर विरोध करते थे परन्तु आर्यसमाज का विरोध करने वाले यदुकुल भूषण जी मलकाना शुद्धि से ऐसे प्रभावित हुए कि गद्-गद् हो गए और हर्ष से उनके नयनों से अश्रु बहने लगे।

२७ मार्च १९२३ को सनातन धर्म मन्दिर लाहौर में प्रो० नरसिंह देव ने कहा था, "मैं आर्यसमाजियों के कार्य की सार्वजनिक रूप से प्रशंसा करना चाहता हूं जो वे हिन्दू स्त्रियों को ईसाई-मुसलमान से बचाते हैं।" आपने इसी भाषण में शुद्धि आन्दोलन का डटकर समर्थन किया।

सनातनी पहले कहते थे कि मृतक श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन मरे हुए पितरों को पहुंचता है परन्तु दिसम्बर १९१६ में खरड़ में कोल के पं० लक्ष्मी चन्द्र ने कहा कि मृतक श्राद्ध खिलाने से पुण्य मिलता है। अब पितरों को खीर पहुंचती है—ऐसा कोई नहीं मानता।

गुजरात के न्यायधीश दवे ने The Art Of Life in Bhagwad Gita में लिखा है कि वेद उपनिषद् काल में भारत में मूर्तिपूजा न थी।

सनातनी नेता पं० गोपीनाथ के अखबार 'आम' में उर्दू का निम्न पद छपा था—

गुनाह ओ मासियत क्या है खुदा ये सरकशी करना।
बुतों को सर झुकाना गिड़गिड़ाना आजजी करना॥

अर्थात् पाप क्या है? ईश्वर की आज्ञा को न मानना, मूर्ति पूजा करना और मूर्ति से कुछ मांगना। ईश्वर का धन्यवाद जो सनातनी हिन्दुओं ने बुद्धि से काम लेना आरम्भ कर दिया है। सनातनियों के एक स्वामी दयानन्द बी० ए० हुए हैं। आपने तो कानपुर में कहा था 'मूर्ति पूजा कुछ नहीं, लड़ाई-झगड़े की बातें हैं"। और महाराष्ट्र के देश सेवक विद्वान् साने गुरु जी मूर्तियों को भोग लगाना व्यर्थ घोषित करते हैं। अक्तूबर १९१९ में लाहौर सनातन धर्म के

उत्सव पर मालवीय जी ने कहा, "क्या इस विद्वन्मण्डली में कोई है जो मुझे वेद शास्त्रों में मूर्ति पूजा दिखा सके ?"

वेद ही स्वतः प्रमाण—जो वेद विरुद्ध है सो धर्म नहीं, अमान्य है। १९२४ ई० के नवम्बर के अन्त में शंकराचार्य जी ने रावलपिण्डी में चौथा प्रस्ताव पेश करते हुए कहा था, "सब बातें वेद अनुकूल हों। यदि ईश्वर भी किसी और रूप में आकर हमें वेद विरुद्ध उपदेश करे तो हम न मानेंगे।" यही तो ऋषि दयानन्द का सन्देश, उपदेश व आदेश है।

ऋषिकुल हरिद्वार के मासिक पत्र में छपा "पुराणों के जितने अंश वेदानुकूल हैं वही हिन्दू मात्र को मान्य हैं और जो वेद के प्रतिकूल हैं वे सर्वथा अग्राह्य है।" 'भारत मित्र' कलकत्ता ने वेद को सर्वोच्च घोषित किया और धर्म विषय में पुराणों को सबसे निम्नकोटि में रखा। पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने अष्टादश पुराण दर्पण पुस्तक में पुराणों में बहुत सी अशुद्धियां मान कर उन्हें दूर करने पर बल दिया। मालवीय जी ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा कि यदि जीवित रहना चाहते हो तो पुराणों का संशोधन करना होगा। इसी कार्य के लिए तब एक सनातनी सेठ ने २५००० रु० की बड़ी राशि दान में दी थी।

१-२-३ दिसम्बर १९१६ को आर्यकुमार सभा रोपड़ ने सनातन धर्म कुमार सभा को 'वेद स्वतः प्रमाण हैं अथवा पुराण' विषय पर शास्त्रार्थ की चुनौती दी। उत्तर में सनातनियों ने कहा 'हम केवल वेद को ही स्वतः प्रमाण मानते हैं और किसी को नहीं।"

सनातनी हिन्दू अब ऋषि दयानन्द की सब बातों को मानते हैं, ईश्वर इन्हें बल, बुद्धि दें ताकि हमारे ये सनातनी भाई अब केवल मानने तक ही सन्तोष न करें। अपितु पवित्र वैदिक सच्चाईयों को फैलाने के लिए पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द व श्याम भाई की भांति सिर धड़ की कलाबाजी लगाकर जाति का बेड़ा पार करें। कल्याण उत्थान का केवल यही एक मार्ग है और कोई दूसरा कारण नहीं।

मौलिक भेद पर कुछ सम्मतियां

१. यशस्वी वेदज्ञ पूज्यपाद पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
(देवमुनि वानप्रस्थ)

आपका ७-९-६८ का पत्र पूर्व प्रेषित आपकी दो उत्तम रचनाओं "मौलिक भेद" और "Fundamentals of Vedic Teachings" की एक-एक प्रति सहित प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद। आपकी दोनों पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। 'मौलिक भेद' में आपने मतमतान्तरों से वैदिक धर्म का जो भेद दिखाया है, वह आपके गम्भीर अध्ययन और मनन को सूचित करता है। जिसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आर्यजगत् के उत्तम मनीषियों, स्वर्गीय पं० चमूपति जी, मान्य पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी, श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, डा० सत्य-प्रकाश जी के समुचित, प्रभावशाली उद्धरण स्थान-स्थान पर देकर आपने पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है।...

...आपकी यह पुस्तक 'मौलिक भेद' बहुत अच्छी लगी। मैं इसका युवक तथा शिक्षित वर्ग में विशेष प्रचार चाहता हूं। अंग्रेजी की 'Fundametnals of Vedic Teachings' भी बहुत अच्छी है। बड़ी स्पष्टता से आपने वैदिक मन्तव्यों का प्रतिपादन किया है।"

२. सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व मन्त्री, भारत विख्यात वैद्य एवं लेखक कविराज हरनाम दास लिखते हैं—

"आपके पुरुषार्थ से आर्यसमाज अपने को धन्य मानता है।"

३. श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के विद्वान्, सुशिष्य श्री पं० राधे मोहन जी आर्य—

"आपकी पुस्तक अभी-अभी बड़े मनोयोग पूर्वक आद्योपान्त पढ़ गया। पूज्य उपाध्याय जी ने पहले भी इसे पढ़ने के लिए कहा था और मुझे इस पर

अपनी सम्मति देने के लिए कहा था किन्तु समयाभाव या प्रमादवश इसे सरसरी दृष्टि से पढ़ लिया था किन्तु अब मैंने ध्यान से पढ़ लिया है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि आर्यसमाज में आज किस्से-कहानी या लिखने वालों का बाहुल्य है किन्तु वैदिक सिद्धान्तों पर सूक्ष्म दृष्टि से यथातथ्य रूप से लेखकों की कमी है। इस स्थिति में आप जैसे युवक के द्वारा सिद्धान्तों पर तथ्यता को दृष्टि में रखते हुए जो 'मौलिक भेद, लिखी गई है, वह प्रशंसनीय है। और निराशावादियों के मुंह पर गहरा तमांचा है, जो कहते रहते हैं कि आज युवकों की आर्य सिद्धान्त व धर्म प्रचार की ओर रुचि नहीं हैं और आर्य जगत् से तत्वदर्शी विद्वान् समाप्त हो गए हैं। मेरी तो दृढ़ आस्था है कि दयानन्द की फुलवारी कभी सूखने नहीं पाएगी और समय-समय पर उद्भट विद्वान् आर्यसमाज में जन्म लेते रहेंगे।...

...मैं इसके कई स्थलों को कई-कई बार पढ़ गया। क्योंकि वे इतने मर्म-स्पर्शी तथा सुधारात्मक व्यंग्य थे कि जिसे पढ़ने में मजा भी आता था।...

...मेरी सम्मति है कि 'मौलिक भेद' में वैदिक एवं अवैदिक सिद्धान्तों की युक्ति मर्मस्पर्शी व हृदयग्राही समालोचना की गई है। तुलनात्मक विवेचन की शैली रोचक एवं ज्ञानवर्धक है। वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में विशेष सहायक हो सकती है। यदि इसका अंग्रेजी में भी अनुवाद हो सके तो उत्तम रहेगा।"

४. श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह के मासिक 'सविता' की सम्मति।

"पुस्तक तर्क-प्रमाण पुरस्सर, प्रखर एवं ओजस्वी मस्तिष्क से प्रसूत तथा मननीय है।"

ईश-चर्चा

वैदिक धर्म व मत-मतान्तरों में मौलिक भेद क्या है ? इस पर मैं पर्याप्त समय से विचार करता आया हूं। मुझे जो कुछ समझ में आया है, वह विचार-शील सज्जनों की भेंट करता हूं।

प्रथम मौलिक भेद यह है कि मत-मतान्तर अपनी मान्यताओं को मानते तो हैं, उन पर मनन नहीं करना चाहते, मनन करते ही नहीं, मनन को तो अवैदिक मतों में कोई महत्त्व ही नहीं। मतों में हृदय के लिए तो स्थान है, मस्तिष्क के के लिये नहीं।

ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर के ही स्वरूप को लीजिए। मत-मतान्तरों ने ईश्वर पूजा पर बल तो बहुत दिया परन्तु ईश्वर का स्वरूप क्या है इस पर विचार ही नहीं किया जाता। इसका परिणाम यह है कि मूल में ही भूल हो जाने से मानव समाज का अहित व अनिष्ट हो रहा है।

इस्लाम और ईसाई मत में ईश्वर को एक देशी माना गया है। पौराणिक भी ऐसी मान्यता रखते हैं। ऐसा मानते हुए भी सब मतवादी लोग संसार में ईश्वर प्राप्ति के लिए पूजा उपासना पर बल देते हैं, यह मतवादी लोग भगवान् को चौथे या सातवें आकाश, क्षीर सागर व कैलाश पर मानते हैं। फिर भला वह यहां कैसे मिलेगा ? अभाव से भाव व भाव से अभाव नहीं हो सकता। यह दर्शन व विज्ञान का सर्वसम्मत सिद्धान्त है। अतः मतवादियों द्वारा जगत् में प्रभु-प्राप्ति का प्रयत्न उनकी अपनी मानी हुई मान्यताओं के अनुसार व्यर्थ है। जब अन्य मतों का ईश्वर यहां है ही नहीं तो जगत् में वह मिलेगा कैसे ! यह लोग प्रश्न-कर्त्ता को उत्तर मांगने का भी अधिकार नहीं देते।

पौराणिक तो शोर ईश्वर पूजा का मचाते हैं और करते मूर्ति-पूजा हैं। इसका तो नाम ही मूर्ति-पूजा है। यह ईश्वर पूजा कैसे हो गई ? यह शंका मत करो। वेद की अनादि वाणी परमेश्वर का स्वरूप इन शब्दों में बताती है :—

'व्याप्त पुरुष'।[1]

अर्थात् —प्रभु सर्वव्यापक है।

'स ओत प्रोतश्च विभुः प्रजासु।'[2]

अर्थात् :—ईश्वर प्राणियों में ओत-प्रोत है।

सर्वव्यापक ईश्वर ही इस विश्व में प्राप्त किया जा सकता है। जो यहां है ही नहीं, वह यहाँ मिलेगा कैसे ? ऊपर बताया जा चुका है कि पुराणी, किरानी व कुरानी लोग ईश्वर को क्रमशः क्षीर सागर, कैलाश पर्वत, चौथे व सातवें आसमान पर मानते हैं, अतः उनकी प्राप्ति के लिए इन मतों के मानने वालों को वहीं जाना चाहिए जहां उसका निवास है। वैदिक धर्म ईश्वर को एकदेशी नहीं, सर्वव्यापक मानता है। यह वैदिक मान्यता माने बिना मत-वादियों की पूजा उपासना निरर्थक ही है।

वेद ईश्वर को सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक और निराकर मानता है, ईश्वर साकार हो ही नहीं सकता। वायु में, जल में, लोक-लोकान्तरों में, अनेक छोटे बड़े प्राणी हैं। कितने ही जीव-जन्तु हैं, जो हमें आँखों से दिखाई भी नहीं देते। यदि ईश्वर को साकार माना जाए तो छोटे-छोटे कीट-पतंगों के शरीरों का निर्माण साकार ईश्वर ने कैसे किया ? निराकर ईश्वर बड़े से बड़े और छोटे से छोटे शरीर व पदार्थ का निर्माण बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। वह हथनी व तितली दोनों के गर्भ में व्यापक है।

ईश्वर पर आश्रित नहीं

मत-मतान्तर ईश्वर को सृष्टि का रचियता तो मानते हैं परन्तु ईश्वर को पर—आश्रित बना देते हैं। उसकी सृष्टि उसके आधीन नहीं, उसके दूतों व

---

१. अथर्व २०-१३१-१७ २. यजु० ३२-८

पूतों की दया पर है। और कहीं-कहीं यह भी मानते हैं कि 'ईश्वर सब कुछ है' 'ईश्वर जो चाहे सो करे' 'ईश्वर ही सब कुछ करता है। और कभी कहते हैं ईश्वर ही 'सब कुछ कराता है।'

ईश्वर नियन्ता है

अनादि वेद ईश्वर को 'ऋतस्य योनि मानता है। विश्व नियमों में बन्धा है। नियन्ता ईश्वर है। 'ईश्वर जो चाहे सो करे' यह वैदिक मान्यता नहीं। ईश्वर 'जो चाहे' यह एक चापलूसी है, दार्शनिक सत्य नहीं। चापलूसी व सत्य का क्या सम्बन्ध ? मतवादी ईश्वर की उपासना नहीं, चापलूसी करते हैं। यह प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को अखरती है।

एक मुसलमान कवि नजीर अकबर इलाहाबादी ने इसी मनोवृत्ति पर व्यंग्य कसते हुए अपनी एक लम्बी कविता में लिखा :—

जो खुशामद करे खल्क उससे सदा राजी है।
सच तो यह है कि खुशामद से खुदा राजी है।

ईश्वर न सब कुछ करता है, न सब कुछ कराता है।

वेद यह नहीं मानता कि ईश्वर सब कुछ करता है, न ही वह सब कुछ कराता है। ईश्वर व जीव के कर्तृत्व पर हम आगे कुछ विचार करेंगे। यहां यह जान लेना चाहिए कि ईश्वर के नियमों को तोड़ा नहीं जा सकता, ईश्वर स्वयं भी अपने नियमों को नहीं तोड़ता। सृष्टि नियम तोड़ने की जीवों की कुचेष्टा का परिणाम दुःख के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता। ईश्वर अपने सामर्थ्य से सृष्टि का संचालन करता है, पर—आश्रित नहीं। वेद कहता है :—

'विश्वस्य मिषतो वशी' (यह विश्व उसके वश में है)

दूतों-पूतों के सहारे चलने का प्रश्न हो पैदा नहीं होता। वैदिक धर्म का मतों से यह एक मौलिक भेद है।

ईश्वर का ज्ञान व कर्म

वेद का अन्य मतों से एक मौलिक भेद यह है कि मत-मतान्तर ईश्वर के ज्ञान व कर्म में संगति नहीं मानते। मत-मतान्तरों में सृष्टि नियमों के विरुद्ध मान्यताएं, चमत्कारों में विश्वास और आदि सृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव में अविश्वास अथवा आज उस (आदि सृष्टि के समय प्राप्त होने वाले ईश्वरीय ज्ञान) ज्ञान को अनुपयोगी मानना, ये सब बातें ईश्वर के ज्ञान व कर्म की संगति न मानने का परिणाम नहीं तो क्या है ?

ईश्वर की रचना, ईश्वर के ऋत व सत्य का दर्शन, इन मतवादियों के लिए उसकी महती महत्ता का प्रमाण नहीं। उसके नियमों का टूटना अथवा तोड़कर दिखाना अर्थात् चमत्कार ही किसी व्यक्ति को किसी मत में लाने की मुख्य युक्ति है। मत-मतान्तरों में सृष्टि नियमों को तोड़कर दिखाने का दावा करने वाला व्यक्ति धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा है। वैदिक धर्म में बड़प्पन की कसौटी नियम का पालन है, उल्लंघन नहीं। वैदिक ऋषि ईश्वर के नियमों का पालन करने वाले, उसके नियमों का प्रचार करने वाले; उसके ज्ञान का प्रकाश व प्रसार करने वाले होते हैं, वे परमेश्वर के नियम तोड़ने वाले नहीं होते। वेद इसी को कल्याण-मार्ग मानता है। श्रुति का वचन है :—

'सुगा ऋतस्य पन्थाः।'

ऋत का मार्ग सरल होता है। वेद की आज्ञा है :—

'ऋतस्य पथ्या अनु।' (ऋत के मार्ग पर चल।)

जो लोग चमत्कारों में विश्वास रखते हैं उनसे हमारा प्रश्न है कि क्या चमत्कार सृष्टि-नियम के अनुकूल हैं या प्रतिकूल ? महान् आर्य दार्शनिक श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखते हैं :—

The occurrence of an un-natural phenomenon is a contradiction of terms. If it occurs, it is natural; if it is natural it

must occur. Then, is it anti-natural ! No. Who can defy nature successfully ! "[1]

वेद का सिद्धान्त है कि ईश्वर नित्य है, उसका ज्ञान नित्य है और उसका कर्म भी नित्य है। जहां ईश्वर का नियम टूटा समझो वहाँ, उसकी सत्ता का ही अभाव हो गया। एक विद्वान का कथन है कि "नियम के अभाव में मैं यह भी जान नहीं सकता कि भूख कैसे मिटती है। सम्भव है आज खाना खाने से मिटे, कल गाने से, परसों रोने से मिटे।"

1. Superstition Page, 13.

ईश्वरीय ज्ञान

हमने ऊपर लिखा है कि आदिसृष्टि में परमेश्वर के ज्ञान के आविर्भाव में अविश्वास अथवा आज उस ज्ञान को अनुपयोगी मानना ये सब बातें ईश्वर के ज्ञान व कर्म की संगति न मानने का परिणाम हैं।

वैदिक धर्म की मान्यता है कि परमेश्वर ने आदिसृष्टि में ज्ञान का प्रकाश चार ऋषियों की हृदय रूपी गुहा (Cave like heart) में किया। वेद स्वयं कहता है—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

वेद का प्रकाश हुआ, वेद नाज़िल नहीं हुआ

मत-मतान्तर ईश्वर को एकदेशी मानते हैं, अतः वे ज्ञान के प्रकाश की बजाय 'इलहाम का नाजिल होना' मानते हैं। 'नाजिल' का अर्थ है उतरना। ईसाई व मुसलमान भाई ईश्वर को चौथे व सातवें आसमान पर मानते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि वे 'ज्ञान के उतरने' में विश्वास करें। वे ये भी मानते हैं कि अल्लाह अपने नबियों को अपने दूतों द्वारा ज्ञान पहुंचाता है। वेद ईश्वर को सर्वव्यापक मानता है। इसलिए वैदिक मान्यता के अनुसार ईश्वर ने किसी दूत की सहायता के बिना ही ऋषियों की हृदय गुहा में ज्ञान का प्रकाश किया।

पैगम्बरवाद व ईश्वरीय ज्ञान

इस्लाम आदि मतों का 'पैगम्बरवाद' भी ईश्वर को एकदेशी मानने के कारण पैदा हुआ। पैगम्बर का अर्थ है पैगाम या सन्देश लाने वाला। सन्देश

दूर से लाया जाता है। समीप वाले को कुछ सुझाने या समझाने के लिए संदेश भेजने की क्या आवश्यकता है ? इस से स्पष्ट है कि पैगम्बरवाद की नींव ईश्वर की सर्वव्यापकता में अविश्वास या यूं कहिये कि प्रभु की दूरी पर रखी गई है।

सृष्टि-नियम व ईश्वरीय ज्ञान

कुछ लोग आदिसृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान के प्राप्त होने पर शंका करते हैं। हमारा उत्तर है कि सृष्टि ईश्वर का कर्म है। वेद उसका ज्ञान है। सृष्टि-रचना का नियम ही यह सिद्ध करता है कि ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश आदि सृष्टि में ही चाहिए। मनुष्य का नियम है (Necessity is the mother of invention) अर्थात् आवश्यकता आविष्कार की जननी है, सृष्टि-नियम इसके विपरीत है। आवश्यकता से पूर्व ही परमेश्वर ने उसकी पूर्ति के साधन प्रदान किये। यथा :—

मनुष्य बाद में पैदा हुआ पहले रहने के लिए धरती, पीने के लिए पानी, श्वास लेने के लिए वायु, खानपान के लिए अन्न—फल व वनस्पतियां, दूध देने वाले पशुओं को भगवान् ने बनाया। बच्चा जन्म के बाद रोता रहा और फिर मां के स्तनों में दूध आया, ऐसा हम नहीं देखते। दूध आने के बाद बच्चा आया। सृष्टि-नियम यह है कि भगवान् आवश्यकता से पूर्व ही उसकी पूर्ति का सामान पैदा कर देता है। इसमें अपवाद नहीं है। इस सृष्टि नियम के अनुसार परमेश्वर ने आंख बनाने से पूर्व ही सूर्य बना दिया। इसी सृष्टि-नियम के अनुसार भगवान् ने जब बुद्धि दी तो बुद्धि के लिए प्रकाश आदिसृष्टि में दिया।

दैनिक जीवन में ज्ञान पहिले, कर्म पीछे

हठ व दुराग्रह से कोई माने या न माने मन व मस्तिष्क सबका यही वैदिक सिद्धान्त मानता है। अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में लोकोक्ति है :—

Look before you leap.

भाव यह है कि कर्म से पूर्व ज्ञान आवश्यक है। एक लोकोक्ति है--

Think before you speak.

अर्थात् पहिले सोचो फिर बोलो।

ये दोनों वाक्य मानव समाज के वैदिक सिद्धान्त में स्वाभाविक अडिग विश्वास को व्यक्त करते हैं। वैदिक सिद्धान्त यह है कि मानव ने जब सृष्टि में जन्म लिया तो उसके मार्गदर्शन और कल्याण के लिए ईश्वर ने वेद ज्ञान दिया।

कुछ लोग विकासवाद की दुहाई देकर कहते हैं कि मानव ने शनैः-शनैः उन्नति की और उन्नति करते-करते धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त कर लिया। कैसा उल्टा चक्कर है? हम कहते हैं कि ज्ञान उन्नति के लिए आवश्यक है। ये कहते हैं उन्नति करके ज्ञान प्राप्त किया। मनोविज्ञान वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार करता है। मनोविज्ञान यह मानता है कि प्रत्येक मानसिक व्यापार के तीन पहलू हैं। (1) Cognition (ज्ञान), (2) Affection (अनुभूति), (3) Conation (क्रिया)।

मनोविज्ञान का यह सिद्धान्त सारे विश्व के विचारकों को मान्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान आवश्यक है। जब क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान अनिवार्य है तो फिर बिना ज्ञान के मानव ने उन्नति कैसे कर ली?

परिवर्तनशील जगत् के नियम अटल हैं

मतवादी आक्षेप करते हैं कि परिवर्तनशील संसार में मार्गदर्शन के नियम अर्थात् ईश्वरीय-ज्ञान भी समय-समय पर परिवर्तित होना चाहिए। ऐसा कहने वाले बन्धु भूल जाते हैं कि मनुष्य के नियम बदलते हैं। इसका कारण यह है कि जीव अल्पज्ञ है। सर्वज्ञ ईश्वर के बनाए सृष्टि नियम नहीं बदलते। आज तक एक भी तो सृष्टि नियम नहीं बदला। सत्य न मरता है, न जन्म लेता है, सत्य तो नित्य है। सब मानते हैं कि Truth never dies.

वेद ज्ञान अनादि है और देश व काल के बन्धन में नहीं। वेद सब के लिए है और सब युगों के लिए हैं। अंग्रेजी में व्याकरण का नियम है कि Direct से Indirect करते समय यदि किसी वाक्य में नित्य सत्य कहा गया हो तो उस

वाक्य का काल नहीं बदला जाएगा, वह वाक्य सदा वर्तमान काल में ही रहेगा यथा Two and two make four. The earth moves round the sun. Unity is Strength. आदि आदि। यदि पूछा जाए कि इन को काल क्यों नहीं बदलता तो उत्तर मिलता है ये Eternal Truths (नित्य सत्य) हैं, सत्य काल के साथ नहीं बदलता। वह नित्य नई है। अथर्ववेद १०-८-२३ में यही सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए भगवान् ने कहा है :—

सनातनमेनाहुरुताद्यस्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयो ॥

अर्थात् उसको सनातन कहते हैं जो आज भी, फिर भी नया जैसा होता हो, दिनरात दोनों एक दूसरे के रूप में उत्पन्न हुआ करते हैं।

सत्य नित्य है, नूतन भी है

Byron ने भी इसी दार्शनिक सत्य को व्यक्त करते हुए लिखा है—

"Tis strange but true, for truth is always strange, stranger than fiction."

भाव यह है कि सत्य पुराना होने पर भी सदैव नया है, इस को सब मानते हैं। वैदिक धर्म पुरातन है, सनातन है। यह ठीक है परन्तु मानव-कल्याण का यही मार्ग है। जो नित्य बदलता है वह सत्य नहीं, जो सत्य नहीं, वह मान्य नहीं, हितकर नहीं—मानव जाति का भला इसी में है कि हम असत्य को त्याग कर सत्य को ग्रहण करें।

बाईबल में वेद की महिमा

जून १९६८ ई० की बात है। कपूरथला के आर्य बंधु श्री सुलक्षण कुमार जी के साथ मैं केरल में वैदिक धर्म प्रचार के लिए गया। चेंगवन्नम् में हम Seventh Day Adventist Church के. पादरी श्री K.V. Chacko के घर गये। श्री पं० नरेन्द्र भूषण जी तथा पं० गोविन्द भूषण जी भी साथ थे। श्री नरेन्द्र जी ने परिचय कराया। धर्म चर्चा आरम्भ हुई तो पादरी महोदय ने इकदम प्रश्न किया,

"Do you believe in a living God ?"

अर्थात् क्या आप जीवित परमेश्वर में विश्वास रखते हैं ?

मैंने झट उत्तर दिया,

"Yes, but not in an absentee."

अर्थात् हम आर्य लोग जीवित परमेश्वर (अजर, अजन्म, अमर, नित्य, अनादि, सत, चित्त व आनन्द स्वरूप) में विश्वास रखते हैं परन्तु हमारा ईश्वर अनुपस्थित नहीं। कहीं किसी आकाश, पाताल, जल, पर्वत में किसी आसन या सिंहासन पर नहीं बैठा। पादरी महोदय को मेरे इस उत्तर ने झकझोर सा दिया। मैंने कहा—यदि आप आज्ञा दें तो मैं एक प्रश्न करूं ? पादरी महोदय ने कहा, "कीजिए।" मैंने कहा बाईबल में आता है :—

"In the begining was the word and the word was with God, and the word was God."[1]

अर्थात् आरम्भ में शब्द था और ईश्वर के साथ शब्द था, और शब्द ईश्वर था।

पादरी महदोय ने कहा, "हां, बाईबल में ये वचन हैं।" तब मैंने पूछा word (शब्द) से यहां क्या अभिप्राय है ? पादरी महोदय बोले शब्द का अर्थ शब्द है। मैंने फिर पूछा 'आरम्भ में शब्द था; ऐसा बाईबल का कथन है। सृष्टि के आदि वाला शब्द कहां है ? पादरी महोदय ने स्पष्ट कहा, "मुझसे यह प्रश्न आज तक किसी ने नहीं पूछा। न मुझे स्वयं कभी इस पर शंका हुई, मुझे इसका अर्थ ज्ञात नहीं।"

तब मैंने कहा, "मैं इसके अर्थ बताऊं ?" पादरी की आज्ञा पाकर मैंने कहा कि बाईबल का लेखक आर्य दर्शन के पारिभाषिक शब्द 'शब्द' को समझा नहीं सका। वैदिक दर्शन में, वेद प्रमाण, को 'शब्द प्रमाण' भी कहा जाता है। शब्द प्रमाण और भी हो सकता है परन्तु आरम्भ में तो स्वतः प्रमाण वेद ही शब्द प्रमाण था। अतः शब्द का अर्थ वेद ज्ञान है। बाईबल का यह कथन सत्य है कि सृष्टि के आदि में वेद का प्रकाश हुआ।

---

1. St. John, New Testament, Chapter (Verse).

फिर मैंने पूछा "And the word was with God" का क्या भाव है ! पादरी महोदय ने सरलता से मुझे ही इसका रहस्य समझाने के लिए कहा, मैंने कहा वैदिक दर्शन ही इस गुत्थी को सुलझा सकता है। वेद का सिद्धान्त है कि ईश्वर नित्य है। उसका गुण, कर्म-स्वभाव भी नित्य है। वेद नित्य है, ईश्वर का नित्य ज्ञान है, अतः उसका ज्ञान उसके साथ ही रहेगा। ईश्वर से उसका ज्ञान पृथक् नहीं किया जा सकता। पादरी महोदय यह उत्तर सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

मैंने फिर पूछा, "And the word was God का क्या अभिप्राय है !" पादरी जी ने पुनः कहा, "आप ही यह रहस्य समझायें।" मैंने निवेदन किया कि वैदिक दर्शन यह रहस्य भी सरलता से समझाता है, वैदिकधर्म में परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहा गया है। वेद में इस भाव के अनेक मन्त्र आए हैं। उपनिषदों में भी बारम्बार परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहा गया है। बाईबल के ये वचन ईश्वर ने सृष्टि के आदि में अपने अनादि ज्ञान वेद का प्रकाश किया। वैदिक धर्म से विमुख होने के कारण, गुरु शिष्य परम्परा टूट जाने के कारण बाईबल वाले word (शब्द) का अर्थ न समझ सके। परिणाम यह हुआ कि बाईबल के ये शब्द अपने आप में एक उलझन बन गये। यदि word का अर्थ शब्द है तो ईसाई बतायें कि 'आद में शब्द था' का क्या भाव है ! वह 'शब्द' कहां गया ! गुम क्यों हुआ ! वह 'शब्द' ईश्वर के साथ था और ईश्वर था, इसका क्या अर्थ ! वह शब्द निरर्थक था या सार्थक ! वह 'शब्द' था किसका! किसके लिए था ! और क्यों कहा गया !

निष्पक्ष विद्वानों को मानना पड़ेगा कि इसका भाव वही है जो हमने बताया है। केवल वेद ही सृष्टि के आदि में आविर्भाव की घोषणा करता है और किसी भी ग्रंथ ने अपने आदि में आने की बात नहीं कही। युक्ति व प्रमाण वेद के पक्ष में हैं। पादरी महोदय ने सहर्ष हमारा पक्ष स्वीकार किया।

अनादि वेद के सम्बन्ध में डा० गोकुलचन्द जी नारंग ने लिखा है :—

"The Vedas have stood like light-houses of truth and wisdom through the stress and srorms of ages and have

commanded the well-deserved allegiance and reverence of hosts of the wisest and holiest of men and women. All glory to those who, without and desire or hope of material gain, dedicated their whole lives to the study and preservation of every syllable of these monumental works in their pristine purlty."•

"If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance." (श्री र० रामानुजाचार्य)

• Glorious Hinduism.

त्रैतवाद

ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने वाले अवैदिक मत मूलतः अद्वैतवादी हैं। वैदिक धर्म का इनसे मौलिक भेद यह है कि अनादि वेद त्रैतवादी हैं। यद्यपि इस्लाम व ईसाई मत शंकराचार्य जी के अद्वैतवाद को नहीं मानते तथापि इन दोनों मतों की सृष्टि उत्पत्ति सम्वंधी मान्यता अद्वैतवाद का ही विकृत, अदार्शनिक या परिष्कृत रूप है। हैं ये भी अद्वैतवादी। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। मत-मतान्तरों ने ईश्वर के स्वरूप को समझने का यत्न ही नहीं किया। केवल कल्पनाओं से कार्य लिया। सृष्टि उत्पत्ति के विषय में अवैदिक मतों की भ्रांतियों का मुख्य कारण ईश्वर के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न होना ही है।

अथर्ववेद में परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए आता है—

'स एष एक एकवृदेक एव।'

अर्थात्—वह ईश्वर एक है, निश्चय से एक ही है। वह एक वृत् है, मिश्रण नहीं। अमिश्रित है। न कोई उससे बना है और न वह किसी से बना है। बस, मत-मतान्तरों ने मूल में यही भूल कर दी। वे वैदिक धर्म की दार्शनिक सच्चाई को न समझ सके। मतों ने 'ईश्वर सब कुछ है' यह कल्पित मान्यता अपनाकर यह भ्रांति प्रसारित कर दी कि ईश्वर के बिना किसी उपादान कारण के सृष्टि का सृजन कर दिया। फारसी के एक कवि ने लिखा है—

'हर चे बीनी वदां कि मजहरे ओस्त।'

अर्थात्—जो कुछ तू देखता है यह जान ले कि सब उसी परमेश्वर की झांकी है, उसी से व्यक्त हुआ है। भारत के नवीन वेदान्ती तो अद्वैतवादी होने के कारण ब्रह्म के अतिरिक्त जीव व प्रकृति की सत्ता नहीं मानते। इस्लाम व ईसाई मत भी सृष्टि के उपादान कारण प्रकृति की व जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते। ये दोनों मत जीव व प्रकृति को ईश्वर से पैदा हुआ मानते हैं -

इस भ्रांति ने बड़े-बड़े विचारशील लोगों को नास्तिक बना दिया है। प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह शंका उठती है कि सृष्टि की रचना कैसे हुई ? मतवादी उत्तर देते हैं परमेश्वर ने जगत को बनाया है। जब पूछा जाता है कि किससे बनाया तो उत्तर देते हैं, अपने में से बनाया अथवा अपनी शक्ति से, उसने अभाव से सृष्टि का सृजन किया। भारत के महान् क्रांतिकारी व विख्यात विद्वान लाला हरदयाल एम० ए० इन्हीं भ्रम-मूलक विचारों के कारण नास्तिक बने। उन्होंने प्रश्न पूछा है कि यदि भगवान् ने सृष्टि का सृजन किया है तो फिर भगवान् को किसने जन्म दिया ? भगवान् कहां से आ टपका ? उसकी उत्पत्ति कब हुई ?

वैदिक धर्म का तो युक्तियुक्त उत्तर है कि 'परमात्मा, जीव व प्रकृति तीनों अनादि है। तीनों को किसी ने जन्म नहीं दिया। विज्ञान आज इस वैदिक सिद्धांत को मान चुका है—

Matter can neither be created nor it can be destroyed.

प्रकृति को न जन्म दिया जा सकता है, न यह नष्ट की जा सकती है।

महान् वैज्ञानिक न्यूटन का मत

जगत् प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन का गति का पहला सिद्धांत यह है कि—

"Everybody continues its state of motion or rest unless some external force is applied on it."

अर्थात्—प्रत्येक पदार्थ अपनी गति या विराम की अवस्था में रहता है जब तक उस पर कोई बाह्य बल कार्य न करे।"

जड़ प्रकृति गतिहीन है। यह गति नहीं कर सकती, यह विज्ञान व मनोविज्ञान दोनों को स्वीकार है। परन्तु विज्ञान मानता है कि सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब लोक गति करते हैं। Atom परमाणु में भी गति होती है। इस गति का कारण क्या है ? न्यूटन का कहना है कि जब तक बाहर से शक्ति न दी जाय, जड़ वस्तुएं गति नहीं कर सकतीं। सारा संसार गतिमान है। परमाणु में

भी गति है तो फिर बाहर से इनको कौन गति दे रहा है ? मनुष्य में तो वह सामर्थ्य नहीं। न्यूटन के अनुसार यह गति तो कोई और शक्ति दे रही है। वह सर्वशक्तिमान भगवान् है। वेद ने इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है—

ओ३म् तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥[1]

अर्थात्—वह ब्रह्म सब को गति देता है परन्तु स्वयं गति नहीं करता। वह दूर से दूर और निकट से निकट है। ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर व्याप्त है। जब से प्रकृति है तब से परमाणुओं में गति है। प्रकृति कब से है ? विज्ञान वेद के साथ स्वर मिला कर कह रहा है प्रकृति न उत्पन्न हो सकती है, न नष्ट हो सकती है अर्थात् अनादि है। जब प्रकृति अनादि है तो गति देने वाली शक्ति भगवान् को भी अनादि मानना ही पड़ेगा। वैदिक दर्शन ध्यान पूर्वक समझने से यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता कि भगवान् को किस ने पैदा किया ? कब पैदा किया ?

हम वैदिक धर्मी जब कहते हैं कि परमेश्वर ने हमें पैदा किया है तो हमारा 'पैदा' का अर्थ अभाव से भाव नहीं। हम तो यह मानते हैं कि कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है। जैसे लौहार लोहे से वस्तुएं बनाता है या खाती लकड़ी से कुर्सी बनाता है। ऐसे ही परमेश्वर ने अनादि जीवों के लिए अनादि प्रकृति से इस सृष्टि का सृजन किया। 'जन्म' क्या है ? इसका उत्तर महर्षि दयानन्द ने दिया है—

"शरीर के संयोग का नाम 'जन्म' और वियोगमात्र को 'मृत्यु' कहते हैं।" शरीर अनादि प्रकृति से निर्मित होता है और इसका संयोग अनादि जीव से होता है तो इसी को वैदिक धर्मी उत्पन्न होना मानते हैं।

महान् विद्वान् पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का कथन

यदि यह माना जाए कि अभाव से भाव पैदा करने का सामर्थ्य ईश्वर में है तो महान् मनीषी पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के शब्दों में कहना पड़ेगा—

---

१. यजुर्वेद ४०-५।

"Hence there are two kinds of nothing firstly, the ordinary nothing from which nothing comes out, secondly, this peculiar nothing which gives rise to something. Now, what-so-ever has many kinds, is not nothing but something, Hence nothing which is of two kinds, is not nothing but something."[1]

अभाव दो प्रकार का हो गया। एक वह अभाव जिससे अभाव पैदा हो सकता है और एक वह अभाव जिससे भाव पैदा हो सकता है। अब अभाव के दो प्रकार मान लिये तो फिर यह अभाव नहीं, किसी वस्तु का भाव हो गया।

श्री शंकराचार्य आदि कुछ भारतीय दार्शनिकों के अनुयाइयों ने यह भ्रम फैला रखा है कि वेद आदि सत्य शास्त्र अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हैं। ऐसा कहने वाले सत्य की निर्मम हत्या करते हैं।

वेदान्त शास्त्र का वचन है—

'जनमाद्यस्य यतः।'

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है, वही ब्रह्म जानने योग्य है।

प्रश्न यह है कि यदि वेद तथा आर्ष ग्रन्थों ने केवल ब्रह्म की ही सत्ता को माना है तो ब्रह्म द्वारा किसका जन्म होता है? स्थिति और प्रलय किस की?

आर्य ऋषियों ने ईश्वर को सर्वज्ञ माना है। सर्वव्यापक माना है तथा सर्वशक्तिमान माना है। यदि ईश्वर के सिवाय किसी और की सत्ता ही नहीं तो ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान कहना, लिखना व मानना व्यर्थ है। महान् आर्य मनीषी श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने इसी विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है—

सर्वज्ञता का अर्थ क्या है?

"What do these words Omniscience. Omnipresence and Omnipotence mean?" Instead of all-knower, all-present and

1. Wisdom Of The Rishis, Prge 261.

all-powerful, you should say nothing-knower. noihing-pervader and possessor of no power. What did He know when there was nothing ? Where was He present when there was no where ? What does the surperlative most powerful mean when there was none to compare with ?"[1]

श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी ने भी इसी प्रश्न पर विचार करते हुए एक सूक्ष्म तर्क उपस्थित किया है। वे लिखते हैं—

"If there is nothing to change, mould or transfransfrom, the agency which does so loses the very significance as the changer, moulder or transformer."[2]

कुछ लोगों को आज अद्वैतवाद का फैशन हो गया है। वह समझते हैं कि अद्वैतवाद की चर्चा करके अथवा अद्वैतवाद में विश्वास व्यक्त करके वह दार्शनिक रूप में महिमा प्राप्त कर सकते हैं। वे सोचते हैं कि इससे दार्शनिक जगत् में बड़प्पन मिल जाएगा। ऐसा सोचने वालों से स्वामी सत्यप्रकाश जी ने एक प्रश्न पूछा है—

अद्वैतवादी से बड़ा शून्यवादी

If by reduction to unity, one can be a better philosopher perhaps the still better would be he who reduces everything to an Absolute Zero. If the object of knowledge is non-existent, why not believe in the non-existence of the subject also."[3]

'माया' बिना ब्रह्म का कार्य नहीं चलता

भारत के अद्वैतवादी कहा करते हैं कि ब्रह्म सत्य है जगत्-मिथ्या है। जगत् में ब्रह्म के अतिरिक्त जीव या प्रकृति की सत्ता को स्वीकार करना इन ब्रह्म-

1. Philosophy Of Dayanand, Page 81.
2. A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand, Page 261.
3. देखें वही पृ० 264-65.

वादियों की दृष्टि में भ्रम है। परन्तु जगत् की दार्शनिक शंकाओं का समाधान जब अकेले 'ब्रह्म' से वे नहीं कर पाते तो 'ब्रह्म' के साथ 'माया' को भी घसीट लाते हैं। डा० सत्यप्रकाश जी ने बहुत सुन्दर लिखा है—

"Without the help of the indescribable Maya the neo-Vedantic doctrine can-not be substantiated.

अर्थात्—व्याख्या न की जा सकने वाली 'माया' के बिना नवीन वेदान्त का सिद्धान्त पुष्ट नहीं किया जा सकता।

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने अद्वैतवादी नवीन वेदान्तियों के मत की अपनी छोटी बड़ी कई दार्शनिक पुस्तकों में बड़ी रोचक, सरल व सरस शैली में चर्चा की है। ये अद्वैतवादी जगत् को मिथ्या व स्वप्न कहते हैं। उपाध्याय जी ने लिखा है :—

किसान खेती करता है, स्वप्न में नहीं, जागते हुए

"The farmer who is exercising his best energy in tilling the soil and sowing seeds, knows well that the farm is a hard reality. He knows that by sowing the seeds and pursuiug tillage he will in the end get the true harvest; not illusory like a dream object. Some of our philosophers constantly sang of their philosphy of dream, but common people of the world turned a deaf ear to their preachings. This is all good because thus the work of the world goes on as usual on the lower strata of life. The spell of dream could grip only a few persons of higher position "[1]

इसका सारांश यह है कि कृषक जो पूरी शक्ति से हल चलाता है, खेती करता है, वह भली-भांति जानता है कि खेत एक कठोर सत्य है। वह जानता

1. The World As We View It. Page 6.

है कि उसके परिश्रम का फल उसे एक वास्तविक फसल में मिलेगा। उसके परिश्रम का परिणाम एक स्वप्न या भ्रम के रूप में न होगा। हमारे कुछ तत्त्ववेताओं ने अपने 'स्वप्न दर्शन' के बहुत राग गाए परन्तु संसार के जन-साधारण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा, यह अच्छा ही हुआ। इससे संसार का सारा व्यवहार ठीक रूप से चल रहा है। केवल कुछ उच्चवर्ग के लोगों पर ही स्वप्न का जादू है। साधारण जनता पर नहीं।

सृष्टि का स्रष्टा

"यदि परमाणुओं में मिलने का स्वभाव है। तो वह कभी अलग न होंगे, मिले रहेंगे, यदि उनमें अलग-अलग रहने का स्वभाव है तो वह कभी मिलेंगे नहीं, इस प्रकार कोई वस्तु न बन सकेगी, यदि उनमें से कुछ का स्वभाव मिलने का है और कुछ का अलग रहने का, तो जिन परमाणुओं की अधिकता होगी उन्हीं के अनुकूल कार्य होगा अर्थात् यदि मिलने के परमाणुओं का प्राबल्य है तो वह सृष्टि को कभी बिगड़ने न देंगे। यदि अलग-अलग रहने वाले परमाणुओं का प्राबल्य होगा तो वह सृष्टि को कभी बनने न देंगे यदि दोनों ओर से बराबर खींचातानी होगी तो किसी पक्ष को दूसरे पर विजय प्राप्त करनी कठिन होगी।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय अलग-अलग तथा मिलकर यही सिद्ध करती है कि इनका कारण एक चेतन शक्ति है।"[1]

राष्ट्ररक्षा, उपकार व सुधार कार्य जागने वाले करते हैं, स्वप्न लेने वाले नहीं।

जो लोग संसार को स्वप्न ही समझते हैं उनको चाहिए कि वे चारपाई लेकर विश्राम करें। स्वप्न सोने वालों को आता है। सोये हुए लोग किसी देश व समाज का भला नहीं कर सकते। अन्याय, कलह, कुल्टाई व बुराई से लड़ाई नहीं लड़ सकते। बुराई से लड़ाई तो जागने वाले ही कर सकते हैं। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने इसी प्रसंग में लिखा है :—

---

1. आस्तिकवाद पृष्ठ १००, तृतीय संस्करण

"Similarly if all the hardships of life are a mere dream, then the best remedy is to wait for the moment that our eyes are open and we come into wakeful state."[1]

अर्थात्—यदि जीवन के सब दुःख (कष्ट) केवल एक स्वप्न ही हैं तो फिर हमें उस घड़ी की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब हमारे नयन खुले हों और हम जागृत अवस्था में हों।

व्यक्ति और समष्टि का कल्याण जागरण से ही होता है। ज्ञान, मान, आन, शान और धन-धान्य उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो जागते हैं। राजनीति शास्त्र की उक्ति है :—

'Eternal vigilance is the price fo liberty.'

अर्थात्—निरन्तर जागरण ही स्वतन्त्रता का मूल्य है। कल्याणी वाणी वेद में आता है :—

त्रातारो देवा अधिवोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवारीसो विदथम् आ वेदम् ॥[2]

इस वेद मन्त्र में भी यह प्रार्थना की गई है कि बकवाद व प्रमाद हम पर शासन न करें। जीवन में सफलता इसके बिना सम्भव ही नहीं, पर स्वप्नवादी यह रहस्य क्या जानें ? जो लोग सृष्टि से पूर्व केवल एक ईश्वर ही की सत्ता मानकर चलते हैं, वे मतवादी लोग इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि यदि सृष्टि से पूर्व केवल एक ईश्वर की सत्ता थी तो उसने संसार की रचना क्यों की ! किसके लिए की ! रचना का उद्देश्य क्या है ! इन प्रश्नों का उत्तर इन मतों के पास है ही नहीं। क्या सृष्टि उसने अपने लिए बनाई या औरों के लिए ? यदि अपने लिए बनाई तो उसमें क्या कमी थी ? यदि औरों के लिए बनाई तो वे और कौन थे ?

इन मतों की सारी मान्यताएं मूल की इस भूल के कारण निर्मूल एवं

---

1 The World As We View It, Page 7.

2 ऋग्वेद ८.४८.१४

निःसार हैं, परस्पर विरोधी हैं तथा अनेक संशय पैदा करने वाली हैं। इस्लाम व ईसाई मत ईश्वर को दयालु मानते हैं। दयालु कैसे ? वैदिक दर्शन से उत्तर उधार लेकर। ये अवैदिक मत इस शंका का उत्तर देते हैं कि परमेश्वर ने हमारे लिए अनेक पदार्थ बनाये हैं, हमारे कल्याण के लिए सारा संसार बनाया है। अतः वह दयालु हैं परन्तु प्रश्न फिर भी वही बना रहता है कि 'हमारा कल्याण' यह कहने से पूर्व हमें यह बताया जाये कि 'हम कौन' ? हम कहां से आ गये ? जब केवल ईश्वर ही की एक अनादि सत्ता थी तो 'हमारे कल्याण' की खुजली उसके मस्तिष्क में कैसे हो गई ?

श्री पं० गंगा प्रसादजी उपाध्याय ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है :—

"First create a hungry soul, then let him cry of hunger, and then provide food for him. Why all this fun ? Such a belief may be a pious musing but not a philosophy."[1]

अर्थात्—पहले भूखे जीवों को पैदा करके फिर भोजन प्रदान करना। यह क्या तमाशा है ? भले ही यह एक पवित्र विचार हो, परन्तु यह कोई दर्शन नहीं।

अन्य मतों व वैदिक धर्म में एक मौलिक भेद यह है कि अवैदिक मतों में ईश्वर को केन्द्र बिन्दु माना गया है। जीव का कोई महत्त्व नहीं, जीव की सत्ता तो विवश होकर मतों को माननी पड़ती है, जीव की स्वतन्त्र सत्ता मतवादी नहीं मानते। जब मतों का भगवान् सृष्टि बना लेता है तो जीव बीच में धक्के से आ टपकता है या घुस जाता है। वैदिक धर्म में प्रकृति व जीव का अलग-अलग अस्तित्व है। इनकी सत्ता ईश्वर पर अवलम्बित नहीं। परमेश्वर सृष्टि का कर्त्ता है। जीव व प्रकृति का नहीं। जीव का वैदिक दर्शन में अपना महत्त्व है।

मत-मतान्तरों में जीव की स्वतन्त्र सत्ता न होने के कारण मतवादियों के मन में स्वयं अनेक शंकायें हैं जिनका समाधान उनके लिए एक समस्या है। एक फारसी कवि ने लिखा है :—

---

० Vedic Philosphy, Page 9.

दरम्याने कैरे दरया तख्ता बन्दम करदायी ।
बाज में गोई कि दामन तर मकुन हुश्यार बाश ।।

भाव यह है कि भगवान् अजगर-सम लहरों वाले संसार रूपी सागर में, मेरे साथ बोझ बांधकर तूने मुझे पैदा किया है और फिर कहता है कि सावधान रहना कपड़े न भीगें। अर्थात् संसार में हम दुर्बल जीवों को तूने पैदा किया और हम से आशा करता है कि हम निष्पाप रहें, यह तेरी मूर्खता है।

पुरुष एक या अनेक ?

नवीन वेदान्त के कई रूप हैं। श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद श्री स्वामी रामतीर्थ से भिन्न है। कविवर रवीन्द्र का अद्वैतवाद डा० राधाकृष्णन से न्यारा है। कुछ अद्वैतवादी जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। कुछ जीव को ही ब्रह्म मानते हैं। कुछ जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं। वैदिक धर्म की यह मान्यता है कि पुरुष अर्थात् जीव असंख्य हैं।

एक विद्वान ने लिखा है 'अपनी बाबत तो किसी को सन्देह हो नहीं सकता, यह सन्देह ही पृथक् सत्ता (Individuality) का प्रमाण है।'

'क्या मेरे बिना भी कोई और है ? सारा जीवन-व्यवहार अनेकवाद का पोषक है। लेख के लिए सामग्री, ज्ञान, लेखनी व पाठक चाहिएं। लिखते भी तो इसीलिए हैं कि दूसरे पढ़ें।'

'जीवन यात्रा सबकी एक साथ न आरम्भ हुई, न समाप्त। क्रियायें भिन्न-भिन्न, क्रिया के साधन भिन्न, स्वभाव भिन्न, चरित्र भिन्न, कोई जीवन दूसरे की सर्वांश में प्रतिलिपि नहीं।'[1]

"In this world of action we start with diference, our rate of progress is different and consequently we die differently."[2]

संसार की कर्मभूमि में हम भिन्नता से आरम्भ करते हैं। हमारी प्रगति

---

१ डा० दीवानचन्द के दर्शन संग्रह के पृ० ४० का सारांश

२ A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand

की गति भी भिन्न-भिन्न है और परिणाम स्वरूप हम मरते भी भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं।

यदि जीव ब्रह्म का अंश है तो इसमें ब्रह्म के गुण क्यों नहीं ? जीव अल्पज्ञ है, ब्रह्म सर्वज्ञ है। यदि जीव ही ब्रह्म है तो पाप कौन करता है ? यदि जीव ब्रह्म है तो संसार में दुःख, द्वेष, क्लेश व पाप क्यों हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर अद्वैतवाद के पास नहीं। जीव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किए विना संसार की पहेली समझ में नहीं आ सकती।

आज सारे विश्व में मानवीय अधिकारों की (Human Rights) विशेष रूप से मानव की स्वतन्त्रता की दुहाई बहुत दी जाती है। प्रत्येक राजनैतिक दल व नेता दिन-रात स्वतन्त्रता का राग अलाप रहा है। स्वतन्त्रता किस के लिए ? उत्तर है— मानव के लिए, मानव कीस्वतन्त्रता के लिए सब शोर मचाते हैं परन्तु मानव की स्वतन्त्रता जीव की स्वतन्त्र सत्ता का सिद्धान्त माने विना एक थोथा नारा है। महान् दार्शनिक श्री आचार्य चमूपति जी ने लिखा है—

"यदि एक मात्र परमात्मा सृष्टि में कारण हो तो पाप का बीज भी वह ठहरेगा। अतः जीव को अनादि स्वतन्त्रकर्त्ता मानना चाहिए। स्वतन्त्रता पैदा की जाए तो वह स्वतन्त्रता न होगी।"

"An unduly forgiving God has nothing to prevent Him from becoming at times unduly tyrannous. The latter possibility is simply a corolarry from the former presumption."

—Pt. Chamupati ji

पाप और पाप का फल

मतवादी मानते हैं कि उनकी मान्यता मानने से मनुष्य को पाप कर्म का दण्ड नहीं मिलेगा। मतवादी विश्वासमात्र रखने से व्यक्ति को मोक्ष अथवा स्वर्ग का अधिकारी मानते हैं। मत-मतान्तर मनुष्यों को पाप के फल से बचाने का आश्वासन देते हैं। वेद की मान्यता इससे भिन्न है। वेद कहता है—

'पक्तारं पक्वः पुनराविशाति'[1]

अर्थात् मनुष्य जैसा पकाता है वैसा खाता है। वेद का गम्भीर अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वेद के अनुसार सृष्टि का सब से बड़ा सिद्धान्त कर्म फल है। इसे कर्म फल सिद्धान्त कहिए या कर्मचक्रवाद कहिए।

श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने लिखा है—

"भौतिक जगत् का आधारभूत नियम कार्य-कारण का नियम है। इसे सब कोई जानता है। कोई कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिसका कारण न हो, न कोई कारण ही ऐसा हो सकता है जिसका कोई कार्य न हो। जिस कार्य का कारण नहीं; वह कार्य नहीं। जिस कारण का कार्य नहीं; वह कारण नहीं। यही कार्य-कारण नियम जब भौतिक जगत् के स्थान में आध्यात्मिक-जगत् में काम कर रहा होता है तब इसे कर्म का सिद्धांत कहते हैं। कार्य-कारण के भौतिक-नियम का आध्यात्मिक रूप ही 'कर्म' है।[2]

इस कर्म फल सिद्धांत की सत्यता का इससे बड़ा प्रमाण क्या है कि प्रत्येक मनुष्य की कर्म में प्रवृत्ति है। प्रमादी से प्रमादी भी कुछ कर्म करता ही है। कुछ

---

१. अथर्व १२-३-४८

२. आर्य संस्कृति के मूल तत्व

की गति भी भिन्न-भिन्न है और परिणाम स्वरूप हम मरते भी भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं।

यदि जीव ब्रह्म का अंश है तो इसमें ब्रह्म के गुण क्यों नहीं ? जीव अल्पज्ञ है, ब्रह्म सर्वज्ञ है। यदि जीव ही ब्रह्म है तो पाप कौन करता है ? यदि जीव ब्रह्म है तो संसार में दुःख, द्वेष, क्लेश व पाप क्यों हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर अद्वैतवाद के पास नहीं। जीव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किए बिना संसार की पहेली समझ में नहीं आ सकती।

आज सारे विश्व में मानवीय अधिकारों की (Human Rights) विशेष रूप से मानव की स्वतन्त्रता की दुहाई बहुत दी जाती है। प्रत्येक राजनैतिक दल व नेता दिन-रात स्वतन्त्रता का राग अलाप रहा है। स्वतन्त्रता किस के लिए ? उत्तर है— मानव के लिए, मानव कीस्वतन्त्रता के लिए सब शोर मचाते हैं परन्तु मानव की स्वतन्त्रता जीव की स्वतन्त्र सत्ता का सिद्धान्त माने बिना एक थोथा नारा है। महान् दार्शनिक श्री आचार्य चमूपति जी ने लिखा है— "यदि एक मात्र परमात्मा सृष्टि में कारण हो तो पाप का बीज भी वह ठहरेगा। अतः जीव को अनादि स्वतन्त्रकर्त्ता मानना चाहिए। स्वतन्त्रता पैदा की जाए तो वह स्वतन्त्रता न होगी।"

"An unduly forgiving God has nothing to prevent Him from becoming at times unduly tyrannous. The latter possibility is simply a corolarry from the former presumption."

—Pt. Chamupati ji

पाप और पाप का फल

मतवादी मानते हैं कि उनकी मान्यता मानने से मनुष्य को पाप कर्म का दण्ड नहीं मिलेगा। मतवादी विश्वासमात्र रखने से व्यक्ति को मोक्ष अथवा स्वर्ग का अधिकारी मानते हैं। मत-मतान्तर मनुष्यों को पाप के फल से बचाने का आश्वासन देते हैं। वेद की मान्यता इससे भिन्न है। वेद कहता है—

'पक्तारं पक्वः पुनराविशाति'[1]

अर्थात् मनुष्य जैसा पकाता है वैसा खाता है। वेद का गम्भीर अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वेद के अनुसार सृष्टि का सब से बड़ा सिद्धान्त कर्म फल है। इसे कर्म फल सिद्धान्त कहिए या कर्मचक्रवाद कहिए।

श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने लिखा है—

"भौतिक जगत् का आधारभूत नियम कार्य-कारण का नियम है। इसे सब कोई जानता है। कोई कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिसका कारण न हो, न कोई कारण ही ऐसा हो सकता है जिसका कोई कार्य न हो। जिस कार्य का कारण नहीं; वह कार्य नहीं। जिस कारण का कार्य नहीं; वह कारण नहीं। यही कार्य-कारण नियम जब भौतिक जगत् के स्थान में आध्यात्मिक-जगत् में काम कर रहा होता है तब इसे कर्म का सिद्धांत कहते हैं। कार्य-कारण के भौतिक-नियम का आध्यात्मिक रूप ही 'कर्म' है।[2]

इस कर्म फल सिद्धांत की सत्यता का इससे बड़ा प्रमाण क्या है कि प्रत्येक मनुष्य की कर्म में प्रवृत्ति है। प्रमादी से प्रमादी भी कुछ कर्म करता ही है। कुछ

---

१. अथर्व १२-३-४८

२. आर्य संस्कृति के मूल तत्व

भी न करे तो भी खाता-पीता तो है। यह भी तो एक कर्म है। यदि कर्म फल सिद्धांत मिथ्या होता तो किसी की भी कर्म में प्रवृत्ति न होती। श्री तुलसीदास ने लिखा है—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहिताः।'[1]

कर्म मेरे दायें हाथ में है और विजय बायें हाथ में।

इस सूक्ति का भाव भी यही है कि व्यक्ति अपने किये हुए कर्म के फल के उपभोग और उपयोग से वंचित नहीं रहेगा। व्यक्ति कर्म करे और उसे उसके श्रम का फल न मिले; यह शोषण है। यह अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार है। कदाचार, शोषण व भ्रष्टाचार का उन्मूलन केवल वैदिक धर्म का कर्मफल सिद्धांत ही है।

एक विद्वान ने लिखा है—

"No act can ever fail to produce its result. Nor can any act produce anything but its true result. It is not possible to do a thing and escape its result."

अर्थात् यह हो नहीं सकता कि कोई कर्म अपना फल पैदा न करे। न ही यह सम्भव है कि एक कर्म अपने वास्तविक फल की बजाय कुछ और पैदा करे। यह असम्भव है कि कोई कर्म करके उसके फल के भोगने से बच निकले।

मत-मतान्तरों और वैदिक धर्म में यह एक मौलिक भेद है। कर्म फल सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ मौलिक बातों पर आगे चलकर हम विचार करेंगे।

वेद का पवित्रता पर बल

हमने ऊपर बताया है कि मत-मतान्तर यह मानते हैं कि मनुष्य किसी व्यक्ति विशेष पर विश्वास या पूजा-पाठ से कुकर्मों के दण्ड से बच सकता है। वेद पाप से बचाने का आश्वासन देता है, पाप के फल से बचने या बचाने का तो वैदिक धर्म व दर्शन में प्रश्न ही नहीं उठता। वेद कहता है—

---

१. अथर्ववेद ७-५०-८

'पवित्रवन्तः परिवाचमास्ते'[1]

अर्थात् पवित्रता के इच्छुक वेद का आश्रय लेते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है—

'मां पुनीह विश्वतः' अर्थात् मुझे सर्वतः पवित्र कर।

अथर्ववेद में कहा गया है—

'अस्मान् पुनीहि चक्षुसे।'

प्रभो! अपने दर्शनों के लिए हमें पवित्र करो।

चारों वेदों में मन, वचन एवं कर्म की पवित्रता के लिए सहस्रों प्रार्थनाएं हैं। वैदिक धर्म प्रभु-प्राप्ति के लिये पवित्रता को आवश्यक मानता है और पवित्रता को प्रभु-दर्शन का फल भी मानता है। वैदिक सिद्धांत को सुस्पष्ट करने के लिए हम यहाँ ऋषि दयानन्द जी महाराज के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का एक प्रमाण देना उपयोगी समझते हैं—

प्रार्थना का फल

प्रश्न—परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए या नहीं?

उत्तर—करनी चाहिए।

प्रश्न—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो फिर स्तुति, प्रार्थना क्यों करना?

उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न—क्या है?

उत्तर—स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण,

---

१. ऋग्वेद ९-७-३३

कर्म, स्वभाव का सुधारना। प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, तथा उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

ऋषि जी ने फिर लिखा है—

प्रश्न—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है या नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाता और सब मनुष्य महापापी हो जाएं।"

प्रभु की कल्याणी पावमानी वेद वाणी व महर्षि के वचनों के प्रमाण देकर हमने स्पष्ट किया है कि वैदिक धर्म पाप की प्रवृत्ति एवं पाप मार्ग से बचकर पुण्य कर्म की प्रेरणा देता है। वेद सर्वथा यह आश्वासन नहीं देता कि पूजा-प्रार्थना, उपासना से तुम्हारे पाप-कर्म का दण्ड तुम्हें नहीं मिलेगा। संसार में अन्याय व भ्रष्टाचार क्या है ? यही ना ! कि एक व्यक्ति दनुजता का रूप धार कर, संसार में उपद्रव करे अथवा उद्दण्डता का मूर्त्तरूप बन जाए और उसे उसके किए का दण्ड न मिले। दूसरों के अधिकारों का अनादर कर, अनधिकार चेष्टा अथवा अयोग्य व अदक्ष व्यक्तियों की मनमानी ही तो भ्रष्टाचार है।

वेद ने जहां कर्म फल सिद्धांत को मान्यता दी है वहां इस सिद्धांत की विरोधी मान्यताओं 'भगवान् भक्तों के वस में है, भगवान् भक्तों के कुकर्मों को क्षमा कर देता है' आदि को झुठलाया है। महर्षि ने उपासना का फल गुण, कर्म एवं स्वभाव का सुधार निरभिमानना, उत्साह व सहाय का मिलना बताकर मानव जाति को आत्मोन्नति व चरित्र निर्माण का कल्याण मार्ग दर्शाया है। यही विश्व-शान्ति का मूल-मंत्र है। वेद कहता है—'विश्वस्य मिषतोवशी' सम्पूर्ण विश्व उस प्रभु के वश में है।

फारसी के एक कवि ने लिखा है—

'वर मन मनिगर वर कर्मे ख्वेश निगर।'

अर्थात् मुझ कुकर्मी की ओर मत देख, तू अपनी दया-दृष्टि की ओर देख।

एक मुस्लिम कवि ने लिखा है—

कह देंगे साफ दावरे महशर के रूबरू।
हां हां गुनाह किए तेरी रहमत के जोर पर॥

अर्थात् हम प्रलय के दिन अल्लाह से स्पष्ट कह देंगे कि हमने तेरी दया व क्षमा के बल पर जी भर कर पाप किये। सदाचार की कैसी सुन्दर शिक्षा है ?

इस मलीन हीन-मनोवृत्ति ने अगणित मानवों को पतनोन्मुख किया है। इसी भावना ने अनेकों के मन में आत्मोन्नति की भव्य-भावनाओं को उभरने ही नहीं दिया। जीवन-सुधार का विचार पैदा ही क्यों हो ? इस विचार ने सदाचार के भवन की दीवारों में दरारें पैदा कर दीं। ईश्वर की दया-दृष्टि व क्षमा के भरोसे मनुष्यों ने अपना आत्म निरीक्षण ही छोड़ दिया। मनुष्यों का चरित्र भी गया और मानवों ने आत्मगौरव भी खोया। मनुष्य का लोक एवं परलोक दोनों ही बिगड़ गये।

ऋषि दयानन्द का महान् उपकार है कि उसने इस भ्रांति को दूर किया कि ईश्वर दयालु है, इसलिए पाप क्षमा कर देगा। महर्षि ने लिखा है ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी। ऋषि ने लिखा है दया और न्याय परस्पर विरोधी गुण नहीं। दोनों का प्रयोजन एक ही है। जितना किसी ने बुरा कर्म किया हो, उसको उतना ही दण्ड देना चाहिए। यह न्याय है। अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाए। दण्ड देकर अपराधी को पाप से बचाना दया है। दूसरों को उसके अत्याचार से बचाना दया है। इस प्रकार न्याय और दया में नाममात्र का भेद है। ईश्वर दयालु है यह दुहाई मचाकर कोई किये हुए कर्म के फल से नहीं बच सकता। ईश्वर न्यायकारी भी है।

जीव की स्वतन्त्रता

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। यह वैदिक धर्म की मुख्य मान्यता है। अवैदिक मत जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं मानते परन्तु व्यवहार में विवशता के वशीभूत वैदिक सिद्धांत का आश्रय लेने पर बाधित होते हैं। संसार की सब भाषाओं में और सब देशों में अच्छा व बुरा, ये दो शब्द प्रयुक्त होते हैं। सब मतवादी इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। प्रश्न यह है कि जब जीव कर्म करने में ही स्वतन्त्र नहीं तो अच्छे व बुरे का प्रश्न कैसे पैदा हो गया ? यदि

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो फिर किसी भी मत का बड़े से बड़ा व्यक्ति (संस्थापक भी) अच्छा नहीं कहा जा सकता। यदि वे (नबी, संस्थापक, संत लोग) अच्छे थे तो इसमें उनका बड़प्पन क्या ? यदि मेरा बनाया मकान सुन्दर है तो श्रेय ईंटों को नहीं दिया जा सकता। ईंट की सुन्दरता उसके कारण नहीं अपितु ईंट बनाने वाले के कारण है। भवन सुन्दर है तो निर्माता के कारण।

वैदिक धर्म जीव के कर्म करने की स्वतन्त्रता को स्वीकार करके विश्व के मानवों को दायित्व-पूर्ण जीवन बिताने की प्रेरणा देता है। वैदिक नागरिक अपने कर्म के लिए अपना दायित्व स्वीकार करता है। कर्म करके उसके द'यित्व से वैदिक धर्मी भागता नहीं। कर्म स्वयं करना व दायित्व भगवान् या शैतान पर डालना, यह कायरतापूर्ण अथवा अनैतिक नीति वैदिक धर्मी आर्यों को सर्वथा अमान्य है। Responsibility and Freedom (दायित्व व स्वतन्त्रता) यह वैदिक दर्शन के नैतिक मान्यताओं की जान है। सारे विश्व का आचार शास्त्र और सारे देशों का दण्ड विधान इसी सार्वभौमिक वैदिक दृष्टिकोण पर टिका हुआ है। न्यायालयों में न्यायाधीश क्या करते हैं ? यही न ! कि अमुक को यह दण्ड दिया जाय क्योंकि उसने अपराध किया है और अमुक को छोड़ दिया जाए क्योंकि वह निरपराधी है। उसने आपत्तिजनक कार्य नहीं किया। जीव की स्वतन्त्रता में अवैदिक मतों के मानने वाले विश्वास करें या न, परन्तु अपने-अपने राष्ट्र में शान्ति-व्यवस्था रखने के लिए न्यायालयों में मनुष्यों को उनके किए हुए कर्म के लिए उत्तरदायी मानकर दण्ड दिया जाता है। एक मुस्लिम कवि ने इस वैदिक मान्यता के मर्म को समझ कर मुसलमान तत्वज्ञानियों से इस्लाम पर चुभता व्यंग कसकर एक प्रश्न पूछा है—

खूब हंसी आती है मुझे हजरने इनसान पर।
फेले बद तो खुद करे लानत करे शैतान पर॥

अर्थात् कुकर्म स्वयं करके शैतान के सिर सारा दायित्व थोप देना, यह कहां की नैतिकता है ?

इस्लाम व ईसाई मत में तो जीव की स्वतन्त्र सत्ता के न होने के कारण जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को मान्यता न मिल सकी परन्तु हिन्दुओं में

भी वेद विमुख होने से यही भ्रमपूर्ण विचार फैल गया है कि "जो करता है परमेश्वर ही करता है।" मेरा ऐसा विचार है कि हिन्दुओं को इस पौराणिक मान्यता का कारण पुजारियों के उपवास (जिन्हें वे व्रत कहते हैं) तीर्थ यात्रा व प्रायश्चित सम्बन्धी कर्मकांड का विधान तो है ही। इसका दूसरा कारण नवीन वेदान्त भी है। उपवास, यात्रा व प्रायश्चित की पौराणिक मान्यताएं यह सिद्ध करती हैं कि ईश्वर चाहे तो कुकर्मी को पुरस्कृत कर दे, नरक वाले को स्वर्ग में और स्वर्ग वाले को नर्क में भेज दे। इस प्रकार जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता एक ढोंग मात्र रह जाती है। जब उपवास मात्र से स्वर्ग मिल सकता है, पत्नी के उपवास से पति की आयु बढ़ सकती है, नदी-नालों में स्नान से पाप कट सकते हैं और मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं तो जीव के कर्म व कर्म करने की स्वतन्त्रता का कोई महत्व नहीं रहता।

नवीन वेदान्त में जीव की सत्ता को ही स्वीकार नहीं किया गया। अतः जीव की कर्म की स्वतन्त्रता का प्रश्न ही नहीं उठता। पौराणिक कीर्तनकार की ताली की ताल है—

'जो बिगड़े सो तेरा नाथ मेरा क्या बिगड़े।'

इन्हीं भावनाओं के वशीभूत गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा—

कोऊ हो नृप हमें का हानि। चेरी छोड़ न भई मैं रानी॥

श्री स्वामी विवेकानन्द ने पुरुषार्थ व परमार्थ का सन्देश देशवासियों को दिया परन्तु उनके जीवन की निम्न घटना से पता चलता है कि वह भी पौराणिक संस्कारों के कुप्रभाव से पूर्णरूपेण न बच सके। 'विवेकानन्द चरित' पुस्तक के लेखक श्रीयुत सत्येन्द्र मजूमदार ने अपनी उक्त पुस्तक (हिन्दी अनुवाद चतुर्थ संस्करण) में लिखा है "३० सितम्बर को स्वामी जी सहसा क्षीर भवानी की ओर चल पड़े और उन्होंने यह आदेश दिया कि कोई शिष्या उनका पीछा न करे।"[1]

फिर लिखा है "होमाग्नि के सम्मुख योगासन पर बैठे हुए विवेकानन्द महामाया के ध्यान में मग्न होने वाले थे। उसी समय सामने टूटे हुए मन्दिर को

---

१. द्रष्टव्य विवेकानन्द चरित्र, पृष्ठ ४१९

देखकर उनके मन में विचार हुआ कि 'जिस समय मुसलमानों ने उस मन्दिर को तोड़ा था, उस समय हिन्दू लोग क्या अपने बाहुबल द्वारा उन्हें नहीं रोक सकते थे ? यदि मैं उस समय उपस्थित होता तो प्राणों की बाजी लगाकर के माता के मन्दिर की रक्षा करता, किसी भी तरह पवित्र मन्दिर का नाश न होने देता ।'

'पर सहसा उन्होंने देव-वाणी सुनी·····अपने कानों से सुना कि जगज्जननी सस्नेह भर्त्सना के साथ कह रही है—"यदि मुसलमानों ने मेरा मन्दिर विध्वस्त कर प्रतिमा को अपवित्र कर भी दिया है, तो इससे तेरा क्या ? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूं ?"

फिर लिखा है कि अगले दिन स्वामी जी ने संकल्प किया कि मैं भीख मांग कर भी उस मन्दिर के संस्कार का संकल्प पूरा करूंगा परन्तु फिर देव-वाणी हुई—जननी ने कहा, "यदि मेरी इच्छा हो तो क्या मैं सात मंजिल वाला सोने का मन्दिर इसी मुहुर्त्त में तैयार नहीं कर सकती हूँ ? मेरी इच्छा से ही यह मन्दिर भग्न हो कर पड़ा है ।" लेखक ने इस पर लिखा है कि घटना से "कर्म योगी के विद्या का अहंकार चूर्ण हुआ ।" कुछ भी हो, इस प्रकार के विचारों से राष्ट्र का पतन होता है । बुराई बढ़ती है, घटती नहीं । जब जगज्जननी ही अपना अपमान स्वयं कराती है तो फिर अन्यायी व पापी किस को कहें ?

सिख सम्प्रदाय के गुरुओं की वाणी में अनेक स्थानों पर जीव को कर्म करने की स्वतन्त्रता के वैदिक सिद्धांत से स्वीकार किया है । यथा—

'आपे बीजि आपे ही खाहि ।' (जपजी)

'जैसा करे सु तैसा पावे, आप बीज आपे ही खावे ।' (महला 1, शब्द 6)

'जैसा बीजै तैसा खावै ।' (महला 4, शब्द 54)

इस प्रकार के स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी सिख सम्प्रदाय वाले भी नवीन वेदांत के प्रभाव में वही राग अलापते हैं—

मानुष के कुछ नहीं हाथ, करे कराए आपे आप।

ये विचार किसी भी देश की प्रगति में साधक नहीं हो सकते। बाधक अवश्य हैं। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है—

"जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी नहीं पावेगा।"[1]

वेदादेश

भगवान् के वेद ज्ञान की घोषणा है—

'कृतं स्मर' अर्थात्—हे मनुष्य अपने किये हुए कर्म को स्मरण कर। फिर कहा है—

'जम्भयाता अनप्नसः।'[2] कर्महीन नष्ट हो जाते हैं।

वेद ने कर्म की महिमा का गान करते हुए कहा है—

'अकर्मा दस्युः'[3] अर्थात्—कर्म न करने वाला ही दस्यु है।

वेद कहता है—

'सुकर्माणः सुरुच।'[4]

अच्छे कर्म करने वाले यशस्वी होते हैं। इससे स्पष्ट है कि वेद जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र मानता है। वैदिक दर्शन के अनुसार उन्नति की सब राहें जीव के लिए खुली हैं। वेद ने उद्बोधक शब्दों में कहा है—

'इतो जयतो विजय संजह जह।'[5]

हे जीव! तेरी यहां जय हो, वहां जय हो, जय ही जय प्राप्त कर, कुछ लोग वेद के कर्म फल सिद्धांत व पौराणिकों के 'भाग्यवाद', 'विधाता के विधान' व 'ईश्वराज्ञा' को एक ही बात समझते हैं। यह उनकी भूल है। वेद के प्रकांड विद्वान् श्री समर्पणानन्द जी ने अपने ग्रन्थ कायाकल्प में लिखा है—

---

१. सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७

२. ऋ० २-२३-९ ३. ऋ० १०-२२-८

४. अथर्व १८-३-२२ ५. अ० ८-८-२४

भाग्यवाद कर्मफल सिद्धांत का शत्रु है

"ईश्वर के सबसे बड़े शत्रु उसके यह भाग्यवादी भक्त हैं। वे भूल जाते हैं कि जिस भगवान् ने हमें विशेष अवस्थाओं में जन्म दिया है उसी ने हमें उन्हें अपने अनुकूल करने की शक्ति और आदेश भी तो दिया है। हाथ, पैर, आंख, नाक, कान और सबसे बढ़कर सिर। यह सब मूल्यवान् सम्पत्ति भगवान ने भाग्य के साथ लड़कर उसे जीतने के लिए ही दी है। भगवान् ने कहा है—

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनरसि आप्नुहि श्रेयांसम् अतिसमम् क्राम।[1]

अर्थात्—तू शास्त्रों को काटने वाला शस्त्र है, तू दूषणों को दूषित कर देने वाली महाशक्ति है, तू चिन्ताओं का पहले से चिन्तन करने वाला अनागस विधाता है। उठ ! जो तेरे साथ की पंक्ति में हैं उन्हें पीछे छोड़ और जो अगली पंक्ति में हैं, उनमें जा मिल।'

एक आर्य महामुनि पाणिनिजी ने प्राचीन काल में अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी में एक सूत्र लिखकर वैदिक दर्शन के एक गूढ़ रहस्य का मानव मात्र के हित के लिए प्रकाश किया। वह सूत्र है—

"स्वतन्त्रः कर्त्ता।" कर्त्ता वह है जो स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र नहीं, वह कर्त्ता नहीं।

जैसा कि हमने पहले भी लिखा है कि आज भले ही कोई जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता के वैदिक सिद्धांत को माने या न माने परन्तु व्यवहार में सारे मानव समाज ने वैदिक धर्म का यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया है। "मैंने यह कार्य किया है।" ये वाक्य प्रतिदिन हम प्रयुक्त करते हैं। न्यायालयों में निर्णय देते हुए न्यायाधीश लोग पाणिनि मुनि के सूत्र 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' की सत्यता की पुष्टि करते हैं।

कुछ लोगों की यह आपत्ति है कि जब हमारा वर्तमान जन्म हमारे पूर्व

---

१. अथर्व २-११-१

कर्मों का फल है तो जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता कहां रही ? फिर तो हम परिस्थितियों के दास हैं। हमारे अधिकार व हमारे स्थान इस संसार में जब पूर्व निश्चित हैं तो हम कर ही क्या सकते हैं ? श्री डा० गोकुल चन्द नारंग ने इसका उत्तर देते हुए लिखा है—

"Rain comes down from the clouds and we can not stop it but we can escape being drenched if we carry a good umbrella or take cover. An arrow once shot cannot be recalled but one can avoid being hit by taking cover or opposing a good shield against it. In the same way, the effect of our past Karma is inevitable, but the virtuous energy displayed in this life can, if enough, successfully ward it off or mitigate it. Opportunity, in fact series of opportunities are available to us....."[1]

परिस्थिति व अन्तःस्थिति

श्री स्वामी समर्पणानन्द जी के इसी विषय में कुछ विचार हम पीछे उद्धृत कर आए हैं। उन्होंने इसी विषय पर कायाकल्प में एक और प्रकरण लिखा है—

"संसार भर के दुराचारी परिस्थिति की आड़ में घोर से घोर अत्याचार करके परिस्थिति की दुहाई दे छोड़ते हैं। जो स्थान कभी कर्मफल, प्रारब्ध, भाग्य तथा कलियुग ने लिया था, वह आज परिस्थिति ने ले लिया है। यह परिस्थिति क्या है। बीसवीं शताब्दी के कर्महीन आलसियों का महाकवच है।"

इसी पुस्तक में स्वामी जी ने लिखा है—

"जहां अन्तःस्थिति बलवान् होती है, वहां सुख और शांति निवास करते हैं, जहां परिस्थिति बलवान् होती है, वहां अनीति, अत्याचार और दुःख निवास

---

१. Glorious Hinduism

करते हैं, इसलिए हमारा मुख्य ध्येय अन्तः स्थिति का सुधार होना चाहिए।"

वैदिक आशावाद

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है—

"Thus Vedic Philosophy is always optimistic. It helps us in always hoping for the better. No eternal hell. No eternal heaven. No eternal doom. The door of bless is always open."[1]

अर्थात् वैदिक दर्शन सदैव आशावादी है। यह सदा हमें कल्याण अथवा भलाई की आशा बंधाता है। न सदा के लिए नर्क और न सदा के लिए स्वर्ग। आनन्द का द्वार, कल्याण का द्वार सदा खुला है। यहां यह स्मरण रहे कि वैदिक धर्म मुक्ति से लौटने का सिद्धांत मानता है। ऋषि दयानन्द का तर्क सरल व स्पष्ट है कि जिसका आदि है उसका अन्त है। जो बना है सो टूटेगा। जो टूटा है सो बना था। सीमित कर्म के लिए असीम फल नहीं हो सकता। अतः जीव मोक्ष का आनन्द भोग कर अवश्य लौटता है।

इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान ने लिखा है—

"The law of karma thus does not do away with free will but constitutes the charter of freedom."

इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्म फल सिद्धांत जीव की स्वतन्त्र इच्छा की अवहेलना नहीं करता अपितु स्वतन्त्रता का अधिकार पत्र है।

डा० राधाकृष्णन् ने भी वैदिक आशावाद को बहुत सुन्दर शब्दों में बताया है—

"Every saint has a past and every sinner has a future."

दर्शन में जीव की स्वतन्त्र करने की क्षमता

कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्त्तुम्।

जीव चाहे तो करे, चाहे तो न करे और चाहे तो विपरीत कर्म करे। आचार

---

1. Vedic Philosophy, Page 14.

शास्त्र (Ethics) का सम्बन्ध जीव के कर्मों से है। यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो आचार शास्त्र के लिए विश्व में कोई स्थान नहीं।

श्री डार्विन साहेब के विकासवाद में 'प्राकृतिक निर्वाचन' का सिद्धांत रखा है। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है—

Natural selection is a dignified name for struggle for existence or survival. The struggle lies in selection, rejecting the unfavourable and letting live the favourable.[2]

निर्वाचन व स्वतन्त्रता

फिर लिखा है—"All selection implies struggle, an effort to choose out of two or more things."

अर्थात् सब प्रकार के निर्वाचन में एक संघर्ष होता है। निर्वाचन दो या दो से अधिक वस्तुओं में से एक को चुनने के यत्न का नाम है। इससे सिद्ध हुआ कि मानव जीवन का अवलोकन जिस दृष्टि से भी करें, जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का सिद्धांत हमें मानना ही पड़ता है।

दया और न्याय

इसके बारे में पहले भी कुछ लिखा जा चुका है। ईश्वर दयालु है किंवा न्यायकारी ? मत पंथों में इस विषय में भी भ्रांति है। इस सरल सी बात को उलझन बना दिया है।

स्वामी सत्यप्रकाश जी लिखते हैं—

"The mercy of God lies in his being just. His justice is the greatest mercy. He is kind to us, because He is just and merciful both."[2]

---

1. Philosophy Of Dayanand Page 333

1. A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 197-198

नैतिक व अनैतिक में भेद

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने बड़े मार्मिक ढंग से लिखा है —

"If it is so. Then there is no distinction between life and no-life, between a moral being and an unmoral being. between a virtuous man and a sinner."

भाव यह है कि यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो फिर जड़ व चेतन में भेद क्या रहा ? फिर एक नैतिक व अनैतिक जीवन में क्या भेद है ? फिर एक सत्कर्मी धर्मात्मा व कुकर्मी दुष्ट में क्या भेद हुआ ?

आज सारा मानव-समाज शोषण के विरुद्ध चिल्ला रहा है। प्राय: सब देशों ने अपने-अपने विधान में अपने नागरिकों को शोषण से बचाने का आश्वासन दिया है।

यही कर्म फल सिद्धांत का प्रयोजन है। कर्म करने की स्वतन्त्रता ही नैतिकता व स्वाधीनता के सिद्धांत का मूल मन्त्र है। एक विचारक ने लिखा है —

"Just as we deem it a charter of freedom that one cannot in Law be robbed of the fruit of One's labour, the Law of Karma is the Magna Carta of free will."

जैसे हम यह अधिकार पत्र समझते हैं कि राज्य अधिनियम के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके श्रम के फल से वंचित नहीं किया जा सकता ऐसे ही कर्म फल सिद्धांत जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का यशस्वी अधिकार पत्र है।

स्वतन्त्रता व नैतिकता का अटूट सम्बन्ध है। स्वामी सत्यप्रकाश जी ने लिखा है —

"Freedom imposes responsibility."[1]

"The universe with its beauties and laws and harmonies, is nothing to idiot mind caged in matter."

—मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी

1. Light Within Page 49

कर्म-फल की व्यवस्था

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। हमारे इसी वैदिक सिद्धान्त का पूरक यह सिद्धान्त है कि 'जीव फल के भोगने में परतन्त्र है।' गीता का निचोड़ ही यह है कि कर्म करना हमारा अधिकार है, फल ईश्वर के आधीन है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए एक प्रश्न उठाया है।

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है व परतन्त्र ?

उत्तर—अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतंत्र है।

सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में भी देव दयानन्द ने लिखा है—

"जीव अपने कर्मों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि करने में स्वतन्त्र है।"

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है :—

"अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है।"

यद्यपि अन्य मतों ने कर्मफल सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी तथापि कुरान आदि पुस्तकों में कहीं-कहीं कर्मफल के अटल नियम का उल्लेख है। इन मतों ने कर्मफल को एक व्यवस्था या नियम नहीं माना, मानें भी कैसे ? यदि सृष्टि में 'व्यवस्था' मतवादियों को दीख जाए तो चमत्कार कहां जाएंगे ? यदि चमत्कार न रहें तो अवैदिक मत कैसे रह सकेंगे ?

कुरान में कहीं-कहीं कर्मों के लिए दुगने-तिगुने फल व दण्ड की चर्चा है। इससे स्पष्ट है कि कर्मफल किसी व्यवस्था के रूप में मतवादियों को मान्य नहीं। ईश्वर की इच्छा पर सब कुछ निर्भर है।

वेद का घोष है—

'सविता सत्य धर्मा'[1] परमेश्वर का सृष्टि नियम सत्य है।

वेद ने कहा है—

'सत्यं बृहदृतं उग्रम्'[2]

अर्थात्—सत्य व व्यवस्था ये आचार शास्त्र व सामाजिक संगठन के प्रथम दो स्तम्भ हैं। वेद पुकार-पुकार कर कहता है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥[3]

भाव यह है कि संसार में वायु, नदियां व औषधियां उसी के लिये सुखदायी हैं, जो ईश्वर की व्यवस्था (ऋत) के अनुसार चलते हैं।

वैदिक धर्म का प्रभु की रचना के अटल नियमों में कैसा अटल विश्वास है इसका एक सुन्दर प्रमाण ऋग्वेद का निम्न मन्त्र है—

ओ३म् सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

अर्थात् जैसे पहले कल्प में सूर्य, द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तथा लोक-लोकान्तर रचे गये वैसे ही इस कल्प में बनाए गये। वैदिक धर्म सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानता है। सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पश्चात् सृष्टि। यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। परमात्मा की इस सृष्टि के नियम भी वही हैं जो पहले कल्पों में थे। ईश्वर अपनी व्यवस्था को भंग नहीं करता।

श्री डा० सत्यप्रकाश ने लिखा है—

"Perhaps lawlessness would have gone more against the theistic conception than the existence of law"[4]

---

१. अ० १-४-१ २. अ० १२-१-१ ३. ऋग्वेद

4. A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page, 208.

सम्भवतः व्यवस्था की उपेक्षा अव्यवस्था, आस्तिकवाद के विचार का अधिक निषेध करती है।

वैदिक धर्म व्यवस्था को ही जीवन का सौन्दर्य मानता है। मतवादी इसके विपरीत चमत्कारों को किसी व्यक्ति की आत्मिक शक्ति का प्रमाण मानते हैं। पं० चमूपति जी ने लिखा है।

"मूर्खों में धर्म का आधार चमत्कार होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है, धर्म इन्द्रिय ग्राह्य जगत् से ऊपर की ओर संकेत करता है। धर्म के मुख्य विषय आत्मा और परमात्मा हैं।"[1]

ईश्वर की अटल व्यवस्था की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट करके ऋषि ने मानव-समाज का भारी उपकार किया है, यह उन की महान देन है कर्मफल सिद्धान्त के मर्म को समझते हुए ऋषि के लिखे शब्द 'ईश्वर की व्यवस्था के आधीन।' अत्यन्त सारगर्भित हैं।

जैन आदि मत व कुछ इतर लोग सृष्टि नियम में तो विश्वास रखते हैं परन्तु कर्मफल दाता अथवा नियन्ता को नहीं मानते। कुछ ऐसे ही लोगों ने प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री आईनस्टाईन से कहा था कि संसार का नियन्ता नहीं। यह विश्व अपने कार्यक्रम (Routine) से यूं चल रहा है। महान् वैज्ञानिक ने उत्तर में कहा, "The nonsense is not merely nonsense. It is objectionable nonsense."

अर्थात् यह अनर्थक बात न केवल निरर्थक है अपितु आपत्तिजनक निरर्थकता है। हमारे पाठक कल्याणी वाणी वेद के निम्न शब्दों पर विचार करें और महान् (Einstein) के उपरोक्त वाक्य का इससे मिलान करें—

ऋतंच सत्यं चाभिद्धात् तपसोऽध्यजायत्'[2]

अर्थात् ऋत (व्यवस्था) व सत्य का आविर्भाव उसी सर्वज्ञ व क्रियाशील परमेश्वर से हुआ। सम्भवतः संसार के किसी भी ग्रंथ में व्यवस्था (ऋत) की (Law and order) की इतनी चर्चा व इतना महत्त्व नहीं दर्शाया गया जितना कि मानव-धर्म वेद में हैं।

---

१ ऋषि का चमत्कार पृ० १

२ ऋ० १०-१९-१

ऋषि दयानन्द जी महाराज का महान् उपकार है कि उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर वेद के भेद खोले। ऋषि के महान् उपकारों में एक यह भी है कि उन्होंने 'ईश्वर की व्यवस्था के आधीन' इस दार्शनिक सूत्र को देकर महान् सत्य का प्रकाश किया। इसी सत्य को महान् Einstein ने अपने उपरोक्त वाक्य में व्यक्त किया है।

ईश्वर के अटल नियम में विश्वास ही मनुष्य को आशावादी, उत्तरदायी, साहसी व प्रगतिशील बना सकता है। जब सृष्टि नियम की स्थिरता में ही हमारा विश्वास नहीं तो वैज्ञानिक अनुसंधान क्या करेंगे ? बड़े सौभाग्य की बात है कि किसी मत को मानने वाला व्यक्ति गम्भीरता से सृष्टि नियम में फेर-बदल या अनियमितता नहीं मानता। यदि सृष्टि नियम ही टूटने लगें तो हमारे किये हुए कर्मों का पूरा फल अनिश्चित हो जाए। व्यक्ति हताश, निराश व उदास होकर बैठ जाएं। अकर्मण्यता का राज्य हो जाने से दुःख व दरिद्रता का अखण्ड शासन सारे विश्व में हो जाए। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है—

"Everything depends upon chance. Whatever happened in the past was due to chance. Whatever is happening in the present is by chance. And whatever will happen in future will depend on chance. Such mentality offers no incentive to man. It makes a man lazy, irresponsible and reckess."[1]

अर्थात् जो कुछ हो रहा है और जो कुछ होगा सब अकस्मात् है। ऐसा विचार कर्म में प्रवृत्त करने की मानव को प्रेरणा नहीं दे सकता। इससे मनुष्य प्रमादी, अनुत्तरदायी व धृष्ट बनता है, वैदिक धर्म का अन्य मतों से यह एक मौलिक भेद है।

विचारशील मानवों को हम स्वामी सत्यप्रकाश जी के ये शब्द हृदयंगम कराना चाहते हैं—

"Order would certainly appear to be nature's first law."[2]

श्री पं० चमूपति जी ने इस विचार की विवेचना करते हुए लिखा है—

---

1 The World As We View It, Page 141
2 A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand, Page 205

"यदि जीवन केवल-मात्र आकस्मिक घटनाओं की शृंखला है तो कोई सुकर्म क्यों करे ! पुरुषार्थ क्यों करे ! मिलता तो वही है जो परमात्मा कहता है। और (अथवा या) प्रकृति ला देती है। इस धारना में न वीरता है, न बुद्धि मत्ता।"[1]

जीव पाप क्यों करता है ?

प्राय: प्रश्न किया जाता है कि जीव पाप क्यों करता है। यदि हम पाप करते हैं तो ईश्वर हमें रोकता-टोकता क्यों नहीं। पहले बताया जा चुका है कि वैदिक धर्म जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र मानता है, इसलिए परमात्मा के रोकने-टोकने का प्रश्न ही नहीं उठता, परमात्मा ने जीव के मार्ग-दर्शन के लिए भले-बुरे के ज्ञान के लिए वेद का प्रकाश दिया है। हृदयों में व्यापक ईश्वर सदैव सत्कर्म की प्रेरणा देता है। यदि जीव फिर भी पाप करता है तो ईश्वर टोके क्यों ! वह अपनी न्याय-व्यवस्था के अनुसार फिर दण्ड देगा, यदि परीक्षा भवन में छात्र ठीक उत्तर नहीं देता तो अध्यापक टोकेगा नहीं। हां ! परीक्षा से पूर्व वह ज्ञान अवश्य देता है। मत-मतान्तर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते कि जीव पाप क्यों करता है। वे तो यह मानते हैं कि जीव को परमेश्वर ने बनाया है। यदि परमेश्वर ने बनाया है तो पाप करने वाला क्यों बनाया ? ऋषि दयानन्द जी ने इस शंका का बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है—

"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ कर असत्य में झुक जाता है।"[2]

वेद भी कहता है—

ऋत्व: समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे। मृढा सुक्षत्र मृढय ॥[3]

अर्थात् जीव अपनी दुर्बलता, दीनता अथवा अल्पज्ञता के कारण कर्त्तव्य मार्ग से भटक जाता है।

वेद का यह मन्त्र 'जीव पाप क्यों करता है !' इस जटिल दार्शनिक समस्या

---

१ वैदिक सिद्धान्त, पृ० ८८

२ सत्यार्थ प्रकाश भूमिका ३ ऋग्वेद ७-८९-३

का जो उत्तर देता है वह वेद ज्ञान की अपनी मौलिक देन है। धर्म के इस मर्म को समझकर ही हम अपना व विश्व का सुधार व उपकार कर सकते हैं।

एक अन्य भ्रान्ति

एक अन्य भ्रान्ति कुछ लोगों में पाई जाती है कि व्यवस्था ही विश्व की नियन्ता है। स्वामी सत्यप्रकाश जी इस पर लिखते हैं—

"We must remember that universe is not run by laws. The running of the universe implies that there is particular law and order.[1]

अर्थात् हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि नियम इस ब्रह्माण्ड को नहीं चलाते। इस ब्रह्माण्ड का रंग-ढंग यह सिद्ध करता है कि यह किन्हीं विशेष नियमों में बंधा हुआ। इसमें एक व्यवस्था है।

---

1 A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 2 08.

वैदिक धर्म की विजय

यह ट्रैकट कब छपा ! इसका पता अभी नहीं चल सका। पं० मेहरचन्द शर्मा 'आर्य वीर' पत्रिका के सम्पादक थे। आपके आर्य वीर पुस्तकालय से कई उत्तम ट्रैक्ट प्रकाशित हुए।

आर्य ट्रैकट सीरीज संख्या २ का तीसरा पुष्प यह उर्दू में लिखा ट्रैकट 'वैदिक धर्म की जय' आपके सामने हम अधूरा पेश कर रहे हैं, अधूरा इस लिए कि हमें इसके पृष्ठ संख्या ३,४,५ वा ६ नहीं मिल सके, यत्न करेंगे खोज निकालें अभी पृष्ठ संख्या २, ७ वा ८ का हिन्दी अनुवाद आपकी सेवा में भेंट कर रहे हैं, मुख पृष्ठ पर तो पुस्तिका का नाम आदि ही है, यह ट्रैकट लाहौर से छपा था। श्री पं० मनसाराम जी वैदिक तोप सरीखे गवेषक तथा अद्भुत सूझ के प्रकाण्ड विद्वान् की एक-एक पंक्ति सुरक्षित रखने के योग्य है। अग्रवाल परिवार में जन्मे इस मनीषी ने देश, जाति वा धर्म की जो सेवा की है, उसे भुला देना बहुत बड़ा अपराध होगा। जिनका नाम सुन कर ही पोंगापंथी कांपते हांपते थे, उस पूजनीय विद्वान् की इस अधूरी कृति का अधिक से अधिक प्रचार करना सब सत्यनिष्ठ नागरिकों का कर्त्तव्य है— —राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

'प्यारे पाठकवृन्द ! यह बात आर्यसमाज और सनातन धर्म की सांझी है कि वेद ईश्वर का ज्ञान है, जो कि परमात्मा ने सृष्टि के आदि में मानवों को धर्म और अधर्म की व्यवस्था देने के लिए प्रकाशित किया। अतः वेदों में निषेध है, वह पाप है, इसमें सन्देह नहीं कि धर्म और अधर्म को जानने के लिए स्मृति, इतिहास तथा अन्तःकरण तथा युक्ति से भी सहायता मिलती है। परन्तु वे वहीं तक प्रमाण हैं, जहां तक वह वेदानुकूल हों, जहां वे वेद-विरुद्ध हों, वहां वे प्रमाण के योग्य नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए स्मृति, इतिहास तथा अन्तःकरण अन्तिम कसौटी (परम प्रमाण) नहीं हैं। अपितु धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए अन्तिम कसौटी वेद हैं। इस लिए धर्म का यह लक्षण ठीक है कि जिसका वेद ने प्रतिपादन किया हो, वह धर्म है। उसका नाम ही वैदिक धर्म है। वही सत्य है तथा वही ईश्वरीय धर्म है तथा वही तीनों कालों में मानने के योग्य है।

चूंकि महाभारत के काल तक लोग वेद को ही धर्म और अधर्म के निर्णय के लिए अन्तिम कसौटी मानते रहे हैं। अतः सकल विश्व में विना किसी मतभेद के वैदिक धर्म प्रचलित रहा। परन्तु महाभारत के पश्चात् एक ऐसा युग आया जब कि वेदों के विद्वानों के कम हो जाने के कारण यह कसौटी लोगों के हाथों से जाती रही। अविद्या-अंधकार के कारण स्वार्थी, दुष्ट, सुरापान करने वाले, व्यभिचारी, मांसाहारी, जुवारियों तथा व्यसनों से ग्रस्त लोगों की बन आई।"
(पृ० दो समाप्त)
पृष्ठ सात—

'करके उसके हाथ से खीर व हलवा लुटाया। इसी सनातन धर्म की प्रतिनिधि सभा पंजाब ने कशमीर के मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं की शुद्धि के लिए व्यवस्था दी तथा शुद्ध किया। अब कहिए यह वैदिक धर्म की विजय है अथवा सनातन धर्म की ! जिस सनातन धर्म के विधवा विवाह का नाम लेते ही सारे शरीर में आग सी लग जाती थी उसी धर्म के पण्डित अब स्थान-स्थान पर सनातन धर्म की विधि के अनुसार विधवाओं का विवाह करके डबल दक्षिणा उड़ा रहे हैं एवं जन्म की मुसलमान विधवा को शुद्ध करवा कर उसके साथ विवाह करने वाले पं० को धर्म प्रचार के प्लेटफार्म पर गुरु का स्थान दे कर उसे गुरु पत्नी का पद दे रहे हैं। (पंजाब सं० धर्म सभा के उपदेशक श्री अरमान की ओर संकेत है)
—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं है ! जो सनातन धर्मी जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था को परम धर्म मानता था, उसने एक जन्म के कायस्थ संस्कृत के विद्वान् को पण्डित की उपाधि देकर पं० रघवर दयाल जी शास्त्री, एम०ए० को सनातन धर्म कालेज लाहौर का प्रिंसीपल नियुक्त करके कर्मों से वर्ण-व्यवस्था के सामने सिर झुका दिया है। क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं है !

जो सनातन धर्म बाल विवाह को अपने धर्म की नींव मानता था, उसने आज बड़ी आयु के विवाह को उचित और ठीक स्वीकार कर लिया और सनातन धर्म के नेताओं ने केन्द्रीय विधान सभा में बहुमत से शारदा ऐक्ट को पारित करके "अष्ट वर्षा भवेत गौरी" वाली मान्यता को बूट की ठोकर से चूर-चूरकर दिया है। क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं है !

सनातन धर्म पहले मानता था कि मूर्त्ति परमेश्वर है फिर उसने पैंतरा बदला कि मूर्त्ति में परमेश्वर की पूजा करते हैं। अब कहता है कि मूर्त्ति के साधन से परमेश्वर की पूजा की जाती है। और कि मूर्त्ति की पूजा मूर्खों के लिए है। ज्ञानियों के लिए नहीं है।

सनातन धर्म पहले कहता था कि पितरों के नाम से खिलाया हुआ भोजन पितरों को उनकी योनि के अनुसार भोजन बन कर वहीं पहुंचता है फिर कहने लगे कि पितर स्वयं भोजन करने को आते हैं। अब यह कहा जा रहा है कि श्राद्ध मृतक पितरों की स्मृति है। सनातन धर्म पहले निराहार व्रतों को मुक्ति का साधन मानता था। अब कहता है कि इससे शरीर को स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

सनातन धर्म पहले तीर्थों को मुक्ति का मुख्य साधन मानता था परन्तु अब आवाज आ रही है कि देशाटन से तथा जलवायु के परिवर्तन से स्वास्थ्य सुधरता है। इस प्रकार सनातन धर्म की अब एक भी मान्यता ऐसी नहीं जिसको सनातन धर्म ने परिवर्तित करके पवित्र वैदिक धर्म के अनुकूल बनाने का यत्न न किया हो।

क्या यह वैदिक धर्म की विजय का मुंह बोलता चित्र नहीं है? जब मैं इस क्रांति को देखता हूं तो भविष्य में पौराणिक मत के मलियामेट होकर वैदिक धर्म से परिवर्तित हो जाने का चित्र मेरी आंखों के सम्मुख फिरता हुआ दीखता है। इस लिए इस दृश्य को देख कर अनायास मेरे मुख से निकलता है—

"जो बोले सो अभय।" "वैदिक धर्म की जय।"

धन्य जागृति का जिन्होंने किया सवेरा है।
ज्ञान—दीपक से मिटाया असत् अन्धेरा है॥
मातृ-चरणों में ही जीवन सुमन बिखेरा है।
उन महापुरुषों को सादर प्रणाम मेरा है॥

—कविरत्न 'प्रकाश'

जागरण (जगराता)

जब से सृष्टि बनी है गुणवान, विद्वान, मतिमान, सुजान, आस्तिक, नास्तिक सब जागरण की महत्ता का प्रचार करते आए हैं। जागरण की महिमा किसको अमान्य है ? जागने से किसको लाभ नहीं ? जागरण अथवा जागते रहना भले ही सरल व सुगम नहीं—यह एक कठिन कार्य है। एक साधना है। तथापि व्यक्ति हो या समष्टि जागरण से सबका कल्याण है। यह एक ऐसी संजीवनी है। जिसका पान कर पूर्व-पश्चिम, सब राष्ट्रों के लोग अनुप्राणित होते आए हैं।

वेद से पुराना तो मानवीय पुस्तकालय में कोई ग्रन्थ नहीं। सब ऋषि, मुनि, महात्मा वेद को परमेश्वर की कल्याणी वाणी मानते आए हैं। भक्त रविदास व गुरु नानक जैसे सन्तों ने भी वेद की महिमा गाई है। पश्चिमी विद्वानों में भी Voltaire, W D., Brown, Emerson आदि अनेक विद्वानों ने नित्य ज्ञान की खान वेद के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए लिखा है कि जन-कल्याण वेद की शिक्षा पर आचरण करने से हो सकता है।

परन्तु वेद भी तो कल्याण के लिए जागरण का उपदेश देता है। वेद की तो स्पष्ट शिक्षा है कि जागरण के बिना न तो भाग्य बनेगा और न ही भगवान् मिलेगा। कई लोगों का स्वभाव बन चुका है कि यूं ही वेद शास्त्र को समझे बिना, वेद शास्त्र की दुहाई देकर प्रत्येक बात का खण्डन करते रहते हैं। ऐसे मन्दभागी लोग ही वेद आदि सत्य शास्त्रों के नाम पर जगराता का भी खण्डन कर देते हैं। ऐसे लोग यहां तक कह देते हैं कि जगराता से धर्म की हानि है। हिन्दू समाज का नाश हो रहा है। संस्कृत पर प्रहार हो रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी घात हो रहा है। ये सब बातें बेसमझी की नहीं तो क्या हैं ? हम एक नहीं, कई शास्त्रों से जगराता के पक्ष में प्रमाण दे सकते हैं।

वेद में आता है—

ओ३म् यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानियन्ति।
यो जागार तमयं आह तवाहमस्मि सख्य न्योकाः। ऋग्वेद

अर्थात् पुरुषार्थी, अप्रमादी, सजग मनुष्य को ही ज्ञान-विज्ञान की सिद्धि तथा शान्ति के साधन प्राप्त होते हैं। संसार भी ऐसे महापुरुषों का मान करता है।

क्या इसने बढ़कर भी जगराते के पक्ष में प्रमाण हो सकता है? गीता में महाराज श्रीकृष्ण कहते हैं—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥

अर्थात्—जो सब भूतों के लिए रात्रि है संयमी योगी उसमें जागते हैं।

पाठकवृन्द स्वयं बताएं गीता का यह श्लोक जगराते का आदेश नहीं तो क्या है?

इस युग में गांधी बापू विश्व-विख्यात नेता हुए हैं। यद्यपि वह राजनीतिज्ञ थे परन्तु धर्म में उनकी रुचि सर्वविदित है। उस लंगोटी सोटी वाले गांधी बाबा जी को एक गीत प्यारा लगता था। वह गीत हमारे देश में आज भी लोकप्रिय है—

उठ जाग मुसाफिर भौर भई। अब रैन कहां जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है। जो सोवत है सो खोवत है।

इस गीत में भी स्पष्ट शब्दों में जागरण का सन्देश है। पश्चिम के विद्वान् भी कहते हैं—

"Enternal vigilance is the price of liberty."

निरन्तर जागरूकता ही स्वतन्त्रता का मूल्य है।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि जागरण का सिद्धांत समूचे मानव-समाज को मान्य है। नेहरू जी ने 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नारे लगवाए तो देश सो गया और चीनियों ने तिब्बत में सड़क बना ली और हमारा सहस्रों वर्गमील पवित्र भू-भाग हड़प करके चाऊ माऊ के चीनी शान से बैठे हैं। यदि हम जगराते के सिद्धांत को मानने वाले होते तो यह दुर्दशा न होती।

इस विज्ञान के युग में तो वैसे भी जगराते की अधिक आवश्यकता है। मानव-जीवन इतना उलझ सा गया है कि प्रातः से सायं तक धन्धे ही समाप्त नहीं होते। अतः कभी-कभार जगराता कर लेने से अगली-पिछली सारी कसर निकल जाती है।

फिर विज्ञान का एक सिद्धांत है कि सोते समय मन में जो भाव लेकर मनुष्य सोता है, उनका बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ता है। बच्चों को बुरी भली आदतें हटाने, बनाने में यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त बड़ा काम करता है। तभी तो पुराने महात्मा, साधु, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी वेद के शिवसंकल्प मन्त्रों का पाठ करके सोया करते थे। अब सारी रात सोने वाले बालक-बालिकाओं के कानों में सारी रात जब लाऊड स्पीकरों द्वारा नगर की दसों दिशाओं में 'जय माता दी' 'जय माता दी'।

तारेगी मां तारेगी, मां शेरां वाली तारेगी।
मेहर करे मां मेहरां वाली, डुबदे बेड़े तारेगी॥

आदि जयकारे व गाने पड़ते हैं तो जाने-अनजाने, अपने-बेगाने कितने परिवारों का जीवन निर्माण होता है। सबसे बड़ा यज्ञ यही है। सबसे बड़ा दान यही है। इससे बड़ी राष्ट्र सेवा और है भी क्या? जागना व जगाना सबसे बड़ा पुण्य है। सबसे बड़ा धर्म है। इसमें क्या सन्देह?

भक्त जनों की ये बातें बड़ी विचारणीय हैं। शास्त्रों के प्रमाणों से जब वे अपने मत की अथवा जगराता की पुष्टि करते हैं तो फिर जगराता का खण्डन करना हठ व मूर्खता ही तो है। आइए, तनिक हठ व दुराग्रह से ऊपर उठकर सत्य को ग्रहण करने व असत्य को छोड़ने की प्रवृत्ति से इस धर्म चर्चा को आगे चलाएं। भक्तजनों की ये बातें यदि सत्य व शास्त्र अनुमोदित हैं तो सब मिल कर इनका प्रचार करें और विश्व का बेड़ा पार कर कुछ शंकाएं हैं, जो उत्तर खोजती हैं।

१. एक बड़ी शंका तो इस विषय में यह उठती है कि क्या श्री रामचन्द्र जी महाराज, माता सीता, हनुमान जी, लक्ष्मण जी ने भी जगराता किया था? वाल्मीकि महर्षि ने भी जगराता किया? रामायण में जगराता की कहीं कोई चर्चा है? यदि हमारे पूर्वज जगराता नहीं किया करते थे तो यह जगराता कब से चला और किसने चलाया और क्यों चलाया?

श्रीकृष्ण जी ने कभी जगराता किया हो तो ऐसा महाभारत में कोई प्रमाण मिलता नहीं? पुराणों में भी नहीं मिल पाएगा। हमारे विद्वान् चिन्तन तो

करते आए हैं। श्रुति गान भी करते आए हैं। एक-एक रुपये की अरदास करके रात भर शोर मचाने की रीति किसी धर्मशास्त्र में नहीं। महात्मा लोग धन ठुकराते तो आए हैं लाऊड स्पीकरों पर एक रुपये वाले की प्रशंसा के पुल किसने बांधे हैं ?

२. जगराते की महिमा गाना और बात है और जागरण का महत्व बताना और बात है। सीमा पर टैंकों और तोपों के साथ अस्त्र-शस्त्रों के साथ सुसज्जित सैनिक प्रहरी बनकर राष्ट्र रक्षा में सजग खड़ा है। पलक झपकने में जितना समय लगता है। उसका इतने समय का प्रमाद भी राष्ट्र को बर्बाद करवा सकता है। वेद भगवान् सजग रहने का आदेश देता है। पुरुषार्थ व परामार्थ का सन्देश देता है और साथ ही यह भी कहता है कि प्रमाद व बकवाद दोनों हम पर शासन न करें, बातें बनाने से भाग्य नहीं बनता। वेद कहता है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ॥

मेरे दायें हाथ में कर्म है बाएं में विजय। इस वैदिक शिक्षा में 'जगराता' का निषेध तो है, विधान नहीं।

३. गीता में भी जगराता शब्द नहीं। न ही गीता के श्लोक से इस प्रकार का कोई आशय निकलता है। योग की बात तो इसमें है। योगी लोग जगराते किया करते हैं ? यदि ऐसा होता तो योग दर्शन में ढोलक, चिमटे, छैने, बाजे-गाजे की पूरी चर्चा होती। 'जय माता दी' 'जय माता दी' नारे होते। राम लाल दी अरदास'।

एहदा इक तो लख बनावीं एहदे घर विच फेरा पावीं ॥

आदि सब पद होते।

४. शास्त्रों के वचनों की खींचतान अशोभनीय है। उपनिषद् में आता है :

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।

उठो, जागो और श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त करके होश में आओ। यदि जागने से यहां भी जगराता अर्थ ही लेना है तो फिर यहां उठो भी कहा गया है। रात भर बैठकर शोर मचाते रहना नहीं लिखा।

५. गांधी जी वाले गीत में प्रातःकाल उठ कर प्रभु भजन की प्रेरणा दी

गई है। रात भर ढोलक-चिमटे पर 'जय माता दी' की रट की उसमें कोई चर्चा नहीं। अतः उस गीत का जगराते के पक्ष में अर्थ लगाना अनर्थ है।

लोग कहते हैं कि यह जगराता अनपढ़ों ने चलाया है। धन बटोरने के लिए चलाया गया है।

श्रीराम वेद के विद्वान् थे। शास्त्र में श्रद्धा रखते थे। श्री कृष्ण ने गीता में अपने विषय में लिखा है कि मैं वेदों में सामवेद हूं। [1]हनुमान जी भी वाल्मीकि ऋषि के अनुसार वेद व्याकरण के पंडित थे। पूर्व काल में तो पंडित व धर्मात्मा बनने के लिए वेद शास्त्र का ज्ञान आवश्यक था। बहुश्रुत होना भी भारत में एक बड़ा गौरवपूर्ण विशेषण समझा जाता रहा है। बहुश्रुत शब्द श्रुति अर्थात् वेद से ही तो बना है। परन्तु अब जगराता के कारण वेद शास्त्र, रामायण, गीता आदि के श्रवण पठन-पाठन का प्रश्न ही नहीं उठता। 'जय माता दी', 'जय माता दी' की रट लगाकर कोई भी धर्मात्मा, भक्त व पूज्य बन सकता है। ऋषियों की संस्कृति पर कैसा भयंकर प्रहार किया इस जगराता ने ?

७. जगराता यदि हमारे धर्म का अंग होता तो सारे देश में पाया जाता। यह केवल पंजाबियों तक ही सीमित है। दक्षिण वालों ने जगराता कभी सुना भी नहीं।

८. पहले वेद उपनिषद् के पाठ व प्रवचन आदि करने के लिए संस्कृत पढ़नी पड़ती थी। अब जगराता ने शास्त्र चर्चा का स्थान ले लिया। अतः संस्कृत का भी मारक, संहारक यह जगराता है।

संस्कृत गई ही थी, तुलसी, सूर व मीरा, रविदास, कबीर आदि भक्तों के दोहे, चौपाईयों व भजनों के लिए राष्ट्रभाषा ही पढ़नी पड़ती थी। अब बलिहारी जगराता वाले अनपढ़ भक्तों के कि हिन्दी पढ़ने का कष्ट करने से छुट्टी मिली।

'वर दे दे पहाड़ां विच रहन वालिए।'

आदि आलाप कोई भी करके भक्तराज बन सकता है। वेद गये, शास्त्र गये। उपनिषद् गए, गीता गई। रामायण छुटी, महाभारत भगाई। संस्कृत मारी, हिन्दी से पिण्ड छूटा। 'बोलो भक्तो जय माता दी'।

---

१. वेदेषु सामवेदोऽस्मि

सन्तान का सर्वनाश क्यों न हो ? बच्चे क्यों न बिगड़ें ? रात भर माता को एक-एक रुपया देकर घर-घर फेरा पाने को कहा जाता है। जो रात को भी माँ को विश्राम न करने दें। ऐसी भक्ति व भक्तों के प्रभाव से सन्तान क्यों न बिगड़ेगी ? रिक्शा वाला भी रात को एक रुपये में एक चक्र भी न लगावे और ये भक्त एक से लाख बनवाएं—ऐसी लूट ! यह भक्ति है या लाटरी ? यह भक्ति है या Accountancy ? रात भर पैसे का चक्र ? जाति का क्या बनेगा ?

९. राम आदि महापुरुष माता-पिता के आज्ञाकारी सेवक थे, किन्तु ये जगराते वाले रात को माता के पांव तो क्या दबाते हैं, रात भर 'इस दे घर फेरा, उस दे घर फेरा' माता की घुमाई ऐसे कराते हैं कि संसार में कोई अशिष्ट से अशिष्ट बच्चा भी माता-पिता की ऐसे मिट्टी न कूटे। रात भर जो माता को विश्राम भी न करने दे और उल्टा कष्ट देकर 'जय माता दी' 'जय माता दी' का शोर मचावे तो इसी को कहते हैं घाव भी करना और उस पर फिर नमक भी छिड़कना।

१०. असंख्य छात्र-छात्राओं की पढ़ाई में बाधक बनना क्या भक्ति है ? रोंगियों को रात भर सोने न देना क्या भक्ति है ? क्या भगवान् बहरा है जो रात भर चिल्लाना पड़ता है। घर-घर, गली-गली जगराते हो रहे हैं और ईसाई, मुसलमान अपनी सँख्या बढ़ा रहे हैं। हिन्दू संख्या में कम होते जा रहे हैं। हिन्दू सोये हुए हैं या जागते हैं ? ये जगराते नहीं मरवाते हैं। राम, कृष्ण की सन्तान जागो। चेतो ! उठो ! सुनो ! कुछ करो। शुद्धि का चक्र चलाओ। जगराता नहीं यह ज्ञान-घोटाला हो रहा है।

धर्म का नाश, विद्या की हानि, संस्कृत, हिन्दी व हिन्दू का विध्वंस रोको ! रोको ! रोको !

११. कुछ वर्ष पूर्व की बात है पंजाबप्रदेश में एक विख्यात धार्मिक केन्द्र दीनानगर में जगराता किया गया। 'जय माता दी' के गगन भेदी जयकारों व कीर्तन से नगर गूंज रहा था। भक्ति विभोर भक्तजन झूम-झूम कर गा रहे थे। 'माता' की प्रेरणा से भक्त पिता ने अपने ही बालक का निमर्मता से वध करके 'माता' के पूज्य चरणों में महान बलि देकर अपने को धन्य माना। फिर उस मृत पुत्र के मांस को पकाकर प्रसाद रूप में देने का आयोजन करने ही वाले थे कि किसी ने पुलिस को सूचना दे दी।

पुलिस आ गई। बहुत से भक्त जनों का भागते हुए पता ही नहीं चला। पुत्र की बलि देने वाले क्रूर व नर पिशाच पिता व उस के सगे भाई (बालक के चाचा) ने तब भी पुलिस से कहा कि थोड़ा रुक जाओ। मैं इसको अभी जीवित कर दूंगा। बालक का वध करने की प्रेरणा 'माता' ने इसी 'भक्त राज' को दी थी। बालक का मांस खाने को भी यही उतावला था।

कहते हैं कि Illustrated Weekiy के सम्पादक ने इस घटना को एक स्वर्ण अवसर समझकर कुकृत्य के चित्र प्रकाशित करके विश्व भर में हिन्दू जाति का मुख 'उज्ज्वल' कर दिया। यह समाचार छपा तो सभी पत्रों में परन्तु ऐसे-ऐसे पत्रों ने तो किसी सुधार की भावना से नहीं अपितु मलीन मनोवृत्ति से यह समाचार प्रकाशित किया। सारे संसार में हिन्दुओं को अपयश मिला। ऋषि-मुनियों का, धर्मशास्त्रों का उपाहास उड़ाया गया। इसके उत्तर-दायी कौन ? ये जगराते वाले। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि दीनानगर की इस घटना से हिन्दू जाति की सर्वत्र निन्दा की गई। श्री शंकराचार्य जी व पं० माधवाचार्य जी जैसे सनातन धर्म जगत् के महारथियों को भी तब विवश होकर जगराता के विरुद्ध बोलना पड़ा। ७-११-१९७३ के 'दैनिक हिन्द समाचार' में सिरमौर (हिमाचल) में एक कन्या···माता बनाकर···एक लज्जाजनक घटना छपी है।

१२. ईश्वर के जीवों के कल्याण के लिए सारी सृष्टि की रचना की है। वेद में, उपनिषद् में, दर्शनों में कहीं भी शरीर की अवहेलना या उपेक्षा नहीं की गई। शरीर का एक-एक अंग परमेश्वर ने हम जीवों के भले के लिए बनाया है। इन्द्रियों की महत्ता बताने की यहां आवश्यकता नहीं। पंजाब केसरी दैनिक में यह समाचार छपा कि एक युवक भक्त ने अपनी जिह्वा काट कर माता की मूर्त के सामने भेंट कर दी। लहुलुहान भक्त को हस्पताल पहुंचाना पड़ा। जग-रातों के फलस्वरूप ऐसी-ऐसी घटनाएं नित्य घटती रहती हैं। किस-किस का वर्णन करें ? वेद, शास्त्र, रामायण, महाभारत के प्रचार के न होने से अज्ञान का घटाटोप अन्धेरा छाया है। अन्ध भक्तों की कृपा से जब ऐसे-ऐसे समाचार छपते हैं तो देश-विदेश में विधर्मियों को, ऋषि-मुनियों और श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों की निन्दा का दुःसाहस होता है।

१३. जन साधारण की भक्ति भावना का चतुर लोग दुरुपयोग करते तनिक

नहीं सकुचाते। पुरानी देवियों के नाम पर तो जगरातें थे ही। अब स्थान-स्थान पर नई देवियां प्रकट हो रही हैं। कोई सन्तोषी माता है तो कोई गीता माता; कोई योग माता तो कोई मौनी माता। लुधियाना जैसे बड़े नगरों में प्रैस की सहायता व विज्ञापन आदि के सहारे इन माताओं के दूत-पूत इनका प्रदर्शन कराते हैं।

कभी-कभी एक बड़ी विचित्र बात ये भक्त लोग कहते व करते हैं। किसी न किसी को खड़ा कर देते हैं कि 'इसके अन्दर माता आ गई है।' भले लोगो! तनिक विचारो क्या मूर्खता की बात कह रहे हो? माता द्वारा बच्चे प्रकट होते हैं या बच्चों से माता प्रकट हुआ करती है? सृष्टि नियम की निन्दा क्या भगवान् की निन्दा नहीं?

१४. जहां दुष्काल-दुर्भिक्ष हो, वहां कोई माता क्यों नहीं प्रकट होती? लुधियाना, जालंधर, देहली जैसे समृद्ध नगर ही क्यों इन माताओं के रास आते हैं?

१५. पहले ढोंगी पुरुष अवतारों की बाढ़ आई थी। इन्दिरा जी के सत्तारूढ़ होने पर नारियों का उत्साह भी बढ़ा था कि इस क्षेत्र में भी पुरुषों को खदेड़ा जाए। प्रयास तो अच्छा था। जाति का क्या बनेगा? कालवा जींद के पास एक 'नलका' भी भगवान् बना बैठा है। तिरूपति में सर्प भगवान् बन गया। है। राजस्थान में एक भिक्षुक भगवान है।

१६. ये सैंकड़ों भगवान् और ये देवियां व मातायें जितनी बढ़ रही हैं भ्रष्टाचार, घूस, पाप-ताप व बलात्कार की घटनाएं वैसे ही बढ़ रही हैं। देश, जाति, मनुजता का भाग्य सो रहा है और गली-गली में जगराते हो रहे हैं।

१७. भगवान बहरा है जो रात भर लाऊड स्पीकर बजा कर भक्ति की आवश्यकता हो? यदि यह भक्ति है तो बार-बार दो रुपये की अरदास क्यों? फिर पैसे की प्रमुखता इसमें क्यों? पुनः इस शंका का उत्तर चाहिए कि किस शास्त्र में, किस ऋषि ने जगराता का विधान लिखा है? किस ग्रन्थ में जगराता की पद्धति है? यदि कहीं भी नहीं तो फिर इस मनघड़न्त अज्ञानमूलक भक्ति का परित्याग करके हम सब पुण्य के भागी बनें:

१८. भक्ति भजन मुनीमी नहीं है—जगराते में गाने वाले रात भर यह रट लगाते रहते हैं 'एक रुपये की अरदास', 'रामदास की अरदास'; दो रुपये की

अरदास', 'तीन रुपये की अरदास' हमारा पुनः प्रश्न यह है कि क्या यह भी कोई भक्ति व भजन का ढंग है ? भक्ति कोई मुनीमी अथवा Accountancy तो है नहीं। इस शंका का उत्तर कोई देता नहीं।

१९. 'माता का शेर—किसी को कुछ नहीं कहता।' एक बार हमें अबोहर में श्री चरणदास नागपाल के घर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी बैठक में एक शेर का चित्र देखकर हमने उनकी सुपुत्री कु० सुदेश से पूछा, 'क्या इस बैठक में रात को कोई सोता है ?

उसने कहा, 'नहीं।'

इस पर हमने कहा, बुद्धिमत्ता यही है कि इस कमरे में कोई न सोया करे। जहां शेर रहता हो, वहां सोने वाले का बचना सम्भव नहीं।

वह खिलखिलाकर हंस पड़ी और कहा, 'नहीं, यह शेर किसी को कुछ नहीं कहता।'

तब हमने कहा, 'अच्छा ! यह माता का शेर है, जो किसी को कुछ नहीं कहता।'

उसने कहा, 'हां जी ! माता का शेर किसी को कुछ नहीं कहता।'

आश्चर्य तो यही है कि जगराते वाले ऐसे शेर और ऐसी शेर वाली (कहते शेरां वाली है) के रात भर गीत गाते हैं। जहांगीर ने कांगड़ा के ज्वालामुखी मन्दिर में गोवध करके उसे लूटा व अपवित्र किया। मन्दिर वाली माता कुछ भी न कर सकी। अपमान का विषपान कर चुप्पी साधे रहे। यह जगराते वाले यह गीत गाते नहीं थकते—

'नंगी नंगी पैरो देवी अकबर आया,
सोने का छत्र चढ़ाया।'

जहांगीर ने उसी मन्दिर को भ्रष्ट किया, इस घटना को क्यों भूल गये ? इससे क्या शिक्षा ली ?

१९०५ ई० में कांगड़ा में भूकम्प आया। देवी के अनेकों पुजारी, यात्री मर गये, परिवारों के परिवार भूमि के नीचे दब गये। देवी का मन्दिर भी कांगड़ा में ढह गया। कहां गये देवी के चमत्कार ? जड़ पूजा, बेजान की पूजा से कुछ मिल सकेगा क्या ?

सत्य साईं बाबा ?

आज सर्वत्र अशान्ति है। परिवार दुखी हैं। संसार दुखी है। व्यक्ति भ्रष्ट हो गया है और समष्टि पथ भ्रष्ट है। पिता पुत्र की नहीं बनती। सास बहु के झगड़े हैं। राजनीति के झगड़े रगड़े तो हैं ही। कहीं दुष्काल है तो कहीं बाढ़ व बीमारी का प्रकोप। कंगाली के कारण कुछ संतप्त हैं तो कुछ खुशहाली के कारण दुर्व्यसनों का ग्रास बन रहे हैं, घूस भ्रष्टाचार से सारा समाज दूषित है। आचार-विचार, आहार, संस्कार सब दूषित हो चुके हैं। पीड़ित दुखिया आत्मायें कहां जाएं ! किधर जाएं !

भौतिक उन्नति से सब कुछ मिल जाता तो अमरीका आदि देशों में कोई समस्या न होती परन्तु वहां के युवक-युवतियां भी तो अशान्ति के कारण भारत के वनों में भटक रहे हैं। निन्द्रा लाने के लिए गोलियों का अमरीकन नागरिक पुष्कल प्रयोग करते हैं। सोचना चाहिए कि हम इस दूषित वातावरण में क्या करें ! मानवता की छाती पर आज दानवता दनदना रही है। इस का उपचार-निदान कुछ तो होना चाहिए।

बड़े सौभाग्य की बात है कि ऐसी विषम वेला में एक आत्मा ने मानव के पाप-ताप हरने के लिए अपने दिव्य दर्शन दिए हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि यह आत्मा **श्री सत्य साई बाबा** ही हैं। आज देश भर में, विशेषकर पश्चिम के प्रदेशों में तो बाबा का नाम घर-घर में पहुंच रहा है। छोटे-बड़े, शिक्षित अशिक्षित—यहां तक कि संसद सदस्य, पूर्व संसद सदस्य, प्रदेशों एवं केन्द्र के मन्त्री भी बाबा के दर्शन करके अपने को आज धन्य-धन्य मानते हैं।

सर्वसाधारण में भी आज यही चर्चा है कि बाबा 'करनी वाला' व 'पहुंचा हुआ बाबा' है। बाबा कई शक्ति वाला है जो इतने बड़े-बड़े लोग उसके अनुयायी हैं और उसके दर्शनों के लिए तड़पते-तरसते हैं। दैनिक पत्रों में बाबा के

चमत्कारों की चर्चा चलती रहती है। कई नेताओं ने भी इस विषय में कुछ लेख लिखे हैं।

बाबा चमत्कारी बाबा है ; कोई ऐसा-वैसा तो है नहीं। बाबा की दिव्य शक्तियों का परिचय पाकर भी जो बाबा की चरण-शरण में नहीं आएगा। वह घोर दुःख को पाएगा। उस जैसा अभागा अथवा मन्दभागी और कौन होगा ! सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश धरती पर पड़ रहा है फिर भी कोई अन्धेरे में ही रहे तो दोष सूर्य का नहीं, उस व्यक्ति का है जो सूर्य के तेज से अपने को दूर रखने का प्रयास कर रहा है।

आज कौन दुखी नहीं ! सब दुखी हैं। फिर दुःख से मुक्त करने वाले की शरण में न आना भयंकर भूल होगी। यूं कहिए कि इस भूल से सारी धरती का अनिष्ट होता है। क्यों ! इसलिए कि जब तक धरती पर एक भी मानव दुखी है, धरती सुखधाम नहीं बन सकती। बाबा सब का कल्याण चाहते हैं। बाबा सब की पीड़ा हरना चाहते हैं। औषधि भी है और रोगी भी। फिर यह तो इतिहास की दुखद दुर्घटना ही होगी जो औषधि का सेवन रोगी न करे।

पूर्व कालों में और आज के युग में एक भेद है और यह भेद कोई साधारण नहीं। श्री राम, श्री कृष्ण गौतम व कणाद ऋषि आए, बुद्ध आए, भक्त कबीर, बाबा नानक, सन्त तुकाराम आए। इस पिछली शताब्दी में राममोहन राय, दयानन्द, विवेकानन्द आदि महापुरुष आए परन्तु उन सब महापुरुषों को जनता से सम्पर्क जोड़ने में एक बड़ी कठिनाई थी, यातायात के साधनों की व प्रेस की। तब आने-जाने के इतने विकसित साधन न थे, न ही इस प्रकार के दैनिक समाचार पत्र, जो उन महापुरुषों की गतिविधियों को व्यापक रूप से प्रचारित कर सकें। अतः अधिक जनता यदि उनके सन्देश को न सुन सकी तो कुछ समझ में भी आता है परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में यदि कोई पत्र-पत्रिकाओं व पुस्तकों में पढ़—सुनकर भी बाबा के निकट नहीं आता तो वह बड़ा दोषी समझा जाएगा। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि एक क्षण भी नष्ट न किया जाए; क्षण भंगुर जीवन का सुधार करने व अपना बेड़ा पार करने में विलम्ब करने वाला कभी भी अकलमन्द नहीं कहा जा सकता। कल पर सुधार का प्रोग्राम छोड़ने वाला तो अकलबन्द है।

१. बाबा के चमत्कार सर्वविदित हैं, स्पष्ट हैं कोई भी साक्षात् कर सकता है। क्या आपने समाचार पत्रों में नहीं पढ़ा कि बाबा दूसरों के हाथ को जब अपने हाथ में लेते हैं तो बाबा के पवित्र हाथों से भभूती गिरने लगती है। कई बड़े-बड़े व्यक्तियों ने अपना हाथ बाबा के हाथों में देकर बाबा की राख लेकर अपने को धन्य-धन्य माना है। प्रत्यक्षदर्शी कहते हैं कि बाबा के हाथों में कुछ भी नहीं होता। न जाने किस अलौकिक दिव्य शक्ति से कहां से बाबा भभूती ले आते हैं।

२. बड़े-बड़े विश्वस्त नेताओं ने बाबा के इस दैवी चमत्कार को देखा है और इस राख को चाटा है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि जिस के हाथों पर यह ईश्वरीय राख गिरी वह तो अभी इसे चाट भी नहीं पाया कि दर्शकों की भारी भीड़ उस भक्त के हाथ को चूमने-चाटने के लिए टूट पड़ती है। कुछ वर्ष पूर्व स्व० श्री ला० जगत् नारायण पूर्व संसद सदस्य के हाथ को चाटने के लिए जन समुद्र उमड़ पड़ा था।

३. यह अब किसको ज्ञात नहीं कि बाबा ने इसी राख से असंख्य रोगियों को रोगमुक्त कर दिया है। रोग का जाते पता नहीं लगता। श्री क० म० मुन्शी ने भी एक लेख में यह बात लिखी थी। यह कितना बड़ा उपकार है। दुखी मानवों की सेवा सच्ची ईश्वरोपासना है त्रसित एवं व्यथित आत्माओं की आज एक ही आस है और वह है सत्य साई बाबा।

४. यहीं पर बस नहीं, बाबा की शक्ति अब विराट् रूप धारण कर रही है। अबोहर फाजिल्का में ऐसी अनेक घटनायें देखने व सुनने में आई हैं कि कई भक्तों ने अपने इष्ट देव पूजनीय श्री सत्य साई बाबा के चित्र को अपने घरों की शोभा बनाया तो बाबा के चित्रों से भभूती गिरने लगती। अनेक व्यक्तियों ने बाबा का साक्षात् तो नहीं किया परन्तु बाबा जी ने ऐसी प्यासी आत्माओं को भी अपने चित्रों से राख देकर आनन्दित कर दिया है।

५. और अब पता चला है कि फाजिल्का में एक बच्ची स्कूल गई तो उस के एक हाथ की हथेली से धुआँ निकलने लगा। अध्यापिकायें चकित रह गईं। यह निराली बात उनकी समझ में न आई। उस बच्ची को घबराहट में घर

भेजा गया। शीघ्र सबको ज्ञात हो गया कि बालिका में भी बाबा की दैवी शक्ति का प्रवेश हो गया है। उसके हाथ पर भभूती देखी गई और जन-जन को भभूती से ही विदित हुआ कि इसमें बाबा की दिव्य शक्ति समा रही है। सत्य साईं बाबा ने अपने भक्तों को उनकी सच्ची भक्ति का यह फल या वर दिया लगता है।

भक्तजनों की ये सब बातें यदि सत्य हैं तथ्य हैं, तो तनिक आइए, सब मिल-कर इन पर विचार करें। कुछ शंकायें हैं जो उत्तर मांगती हैं।

१. चमत्कार से श्री सत्य साईं बाबा का क्या अभिप्राय है ! क्या चमत्कार सृष्टि-गियम विरुद्ध होता है ! यह कैसे हो सकता है ! "The occurence of an unnatural phenomenon is a contradiction of terms. If it occurs, it is natural, if it is natural it must occur. Then is it anti natural ?" No. who can defy nature suceessfully ?

कहा जाता है कि चमत्कार श्रद्धालु, भक्तों को ही दीखते हैं। तो क्या विवेकशील व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि वह जांच कर सके कि "..... it is not a fraud of fraudulent persons" बाबा यदि बिना बोले सर्वत्र चमत्कार ही दिखाते जायें तो संसार के झगड़े मिट जाएं। सारा विश्व उनका अनुयायी बन जाए।

२. बाबा ने कुरुक्षेत्र में गीता की महिमा के विषय में बहुत कुछ कहा परन्तु गीता का मत है कि अभाव से भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। यही वैज्ञा-निक सत्य है। फिर बाबा की भभूती कहां से आती है ! यह तो बाबा के भी मत के विरुद्ध बात है। क्या यह अन्ध-श्रद्धा वालों की उड़ाई गप्प तो नहीं ! भूत प्रेत भी तो सबको दिखाई नहीं देते, वे भी तो मानसिक रोगियों को डराते सताते हैं।

३. बाबा राख से रोग-मुक्त कर देते हैं तो लाखों कोढ़ियों, अन्धों पर राख फेंकें। युद्ध में घायल जवानों को हाथ दें, आँखें दें, टांगें दें तो कितने दुखी परिवार उल्लसित हो जायें। शोकाकुल परिवारों की दीवाली आ जाए, संसार से रोग भाग जायें। करोड़ों रुपये औषधियों पर हस्पतालों में व्यय होते हैं, ये

धन बच जाए। हमारा देश कंगाली के जबड़ों से निकल जाए। गरीबी हटाओ नारा न रहकर बाबा की कृपा से वास्तविकता बन जाए, संसार माने कि बाबा जगत गुरु हैं। क्या बाबा को कोढियों पर, पीड़ित रोगियों पर दया नहीं आती, कम से कम बाबा विश्व के उन मूक शिशुओं को तो करुणा की दृष्टि से देखें, वे शिशु जो हस्पतालों में विलख—रहे हैं। केवल भक्तों के सिरों पर राख फेंकने से विश्व का क्या सुधार हो सकता है ! अनीतिकता व घूस तो यहां यथा पूर्व घुसे हुए हैं।

४. चित्रों से राख अब गिर रही है। यह बात भी बड़ी रोचक है परन्तु किसने देखी ! मधु चित्रों से निकल रहा है। बड़ी अच्छी बात है परन्तु स्मरण रखें कि जादुगर रुपये बना तो सकता है पर केवल दिखाने के लिए। पेट पालने के लिए तो वह तमाशा करके सरकारी मुद्रा की भिक्षा के लिए झोली फैलाया करता है। बाबा जी से कहें कि अपने हाथों से व चित्रों से राख की बजाए धन-धान्य वर्षाएं ताकि देश के भूखे मौत के मुख से बच जाएं। देश तो बंगला देश Refugee Ticket के बोझ से दब गया ताकि बंगला देशवासी बचाए जा सकें और बाबा जी भक्तों के सिरों पर राख ही फेंकते रह गये।

यदि मधु चित्रों से निकलता है तो बाजार में मधु अब भी क्यों पुराने भाव बिक रहा है। बाबा जी मधु के कनस्तरों के न सही, बोतलों के ढेर लगा दें। विश्व उनके चरण पकड़ लेगा।

५. फाजिलका में एक कन्या के हाथ से धुएं की बात भी अच्छी कही। क्यों न यह आग फाजिलका से चार पांच मील परे पाकिस्तानी दानव सैनिकों की छावनियों में लगी ! बाबा राक्षसों को क्यों नहीं जलाते। एक श्रद्धालु बालिका के हाथ में धुआं पैदा करने से उसका व देश का क्या बना !

बस, सत्य शोधकजन इन प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। पुनः हम कहेंगे कि यदि अभाव से राख बाबा पैदा कर सकते हैं तो बाबा अपनी दिव्य शक्ति से तोपों के वे रूसी गोले जो अभी युद्ध में प्रयुक्त हुए, अपने भक्तों के घरों पर फेंकें ताकि भारत का करोड़ों रुपया विदेश में न जाए। भारत शत्रु से विदेशी सहायता के बिना भली-भांति निपट सके। पाकिस्तान द्वारा निर्मित इस्लामी-बम्ब का कोई तोड़ बाबा जी दे सकते हैं क्यों !

रजनीश जी को समाचार पत्रों ने बड़ा बनाया तो उसने भक्तों को Sex Meditation लिंग योग सिखाया। हमने Iliustrated weekly में ये गन्दे चित्र देखे। दुर्भाग्य से हमारे देश में किसी को बड़ा योगी या महात्मा होने की कसौटी आज यह बन गई है कि किसके कितने विदेशी चेले हैं। कई योगाश्रम विदेशी गुप्तचरों के अड्डे बने बताए जाते हैं।

हम चाहते हैं कि बाबा जी शास्त्रोक्त सत्य बातें ही कहें ताकि उनके द्वारा विश्व का हित हो। पाखण्ड किसी के भी नाम पर चले, पाखण्ड ही है। गाड़ी में मुझे एक विज्ञापन द्वारा शुभ सूचना दी गई कि तिरूपति में भगवान् ने सर्प के रूप में अवतार ले लिया।

सर्प ब्राह्मण बनकर पुजारियों से बोला, "डरो मत···।"

अनायास मुख से निकला, धिक्कार है इस पोप लीला पर कि पिता के जन्म की शुभ सूचना पुत्र दे रहे हैं। यह क्या गोरख धन्धा !

आज योगेश्वर नामधारी कई थोथेश्वर लोगों को बुद्धू बना रहे हैं, जनता को एक ईश्वर की उपासना के लिए पवित्र 'ओ३म्' नाम का जप करना चाहिए शुभ कर्म करने चाहिए।

उर्दू में वैदिक साहित्य : एक झांकी

यह भारत के तपस्वी विद्वानों की श्रद्धा का चमत्कार है कि इन्होंने असह्य कष्ट सहकर भी अपने प्राचीन साहित्य की सुरक्षा की है। भारत-भूमि में कई राजनैतिक परिवर्तन हुए। विदेशी आक्रान्ता भी आए। देश ने कई प्रकार की उथल-पुथल देखी, विनाशलीला भी कई बार देखी। हमारे साहित्य और कला की अपार क्षति हुई, फिर भी यहां के विद्वानों ने वेद आदि सत्य-शास्त्रों को कण्ठस्थ करके मानव मात्र की अकथनीय सेवा की है।

इस देश में एक ऐसा समय भी आया जब यहां के विद्वानों ने अपनी ज्ञान-राशि दूसरों से छिपाने की घातक नीति अपनाई। अपने देशवासियों के लिए ही वेद-विद्या के द्वार बन्द हो गये, बाहर वालों की तो बात ही और थी। सर विलियम जोन्स ने जिस प्रकार देव-वाणी संस्कृत पढ़ी, वह कहानी हमारे पुराने लोगों की उस प्रवृत्ति का एक प्रमाण है।

उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द ने जब जन-जागरण तथा वेद-प्रचार का शंख फूंका तो एक नई क्रान्ति हुई। ऋषि दयानन्द ने देश-देशान्तरों एवं द्वीप-द्वीपान्तरों में वेद-सन्देश सुनाने का आदेश-उपदेश दिया। ऋषि के जीवन-काल में ही वैदिक साहित्य समुद्र पार पहुंच गया। ऋषि के जीवन-काल में ही उनके साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद तो नहीं हो सका, किन्तु एक सज्जन श्री मथुरादास ने उनके ग्रन्थ 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' का सार उर्दू भाषा में छपवाया।[1] उर्दू जानने वालों तक वैदिक धर्म का दर्शन पहुंचाने का यह प्रथम प्रयास था। इसके छपने से उर्दू जानने वालों में वेद पढ़ने और वेद की खोज करने की प्रवृत्ति जागी।

---

१. ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, प्रथम भाग, सम्पादक महात्मा मुंशी राम, 'जिज्ञासु', पृ० ३०५।

इसके पश्चात् महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी) की एक खोजपूर्ण पुस्तक 'सुबह उमीद' प्रकाशित हुई। इसमें वेद के पश्चिमी भाष्यकारों की भूलों की समीक्षा करते हुए महर्षि दयानन्द की वेद-भाष्य-शैली की उत्कृष्टता और प्रामाणिकता सिद्ध करते हुए वेद की महिमा का वर्णन किया था। उर्दू में वेद-विषयक यह प्रथम पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ था। इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। लेखक ने दो वर्ष पूर्व इसका हिन्दी अनुवाद व सम्पादन किया था। 'आशा की उषा' नाम से प्रकाशित यह पुस्तक अब उपलब्ध है।

इसके पश्चात् करनाल (हरियाणा) निवासी श्री भाई निहालसिंह जी और महात्मा मुंशीराम जी ने अपने-अपने ढंग से ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका का उर्दू में अनुवाद किया।

उसका एक ही संस्करण निकला, परन्तु बाबू निहालसिंह जी के अनुवाद के कई संस्करण छपे। इस अनुवाद की विशेषता यह थी कि इसके आरम्भ में अनुवादक ने बड़ी विस्तृत एवं पठनीय भूमिका दी थी। यह भूमिका भाई निहालसिंह जी के गम्भीर और विस्तृत अध्ययन का परिचय देती है। इस अनुवाद में बड़ी उपयोगी पाद टिप्पणियां भी हैं।

इन दोनों के पश्चात् उसी युग के एक यशस्वी साहित्यकार श्री लक्ष्मण रामनगरी ने ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका का अनुवाद उर्दू में छपवाया। श्री लक्ष्मण जी की लिखने की एक विशिष्ट शैली थी। इसमें भी उपयोगी पाद-टिप्पणियां थीं।

एक और क्रान्ति—जिन दिनों महात्मा मुंशीराम जी और बाबू निहालसिंह जी द्वारा अनूदित ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के संस्करण छपे, उन्हीं दिनों विद्यासागर प्रेस बरोठा, जिला अलीगढ़ से यजुर्वेद का उर्दू अनुवाद प्रकाशित हुआ। अनुवादक थे श्री नवन्दाप्रसाद गुप्त। यह अनुवाद महर्षि दयानन्द जी के भाष्य के आधार पर था। अनुवादक स्वयं तो कोई बड़ा विद्वान् नहीं था, उसका स्वाध्याय भी विशेष नहीं था तथापि उसकी वेद-प्रचार के लिए लगन और वेद के लिए श्रद्धा प्रशंसनीय है।

इसी विद्यासागर प्रेस से शेष तीन वेदों के और छः दर्शनों एवं उपनिषदों के उर्दू अनुवाद प्रकाशित करने की घोषणा की गई, परन्तु इन पंक्तियों के लेखक

ने भारत के बड़े-बड़े नगरों और ग्रामों में भ्रमण करके बड़ी खोज की है, फिर भी इस प्रेस द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद, सामवेद व अथर्ववेद तथा शास्त्रों और उपनिषदों के उर्दू अनुवाद कहीं देखने को नहीं मिले। लगता है अनुवाद हुए ही नहीं या फिर हुए तो छपे नहीं।

श्री लक्ष्मण जी रामनगरी ने भी यजुर्वेद के कुछ अध्यायों का उर्दू अनुवाद छपवाया था। वह भी अपना सपना साकार न कर पाये। इसका कारण आलस्य या प्रमाद तो न था क्योंकि उनके सामने कई साहित्यिक योजनाएं रहती थीं। अपनी शक्ति एवं साधनों से वे जुटे रहते थे। जो कुछ भी कर सकते थे, करते रहे।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही वैदिक साहित्य पर छपे कुछ लघु ग्रन्थों का अंग्रेजी से उर्दू अनुवाद भी छपा। वैदिक दर्शन और वैदिक धर्म पर कुछ ठोस लघु पुस्तकें उर्दू में लिखी गईं।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा ने जर्मनी में एक शोध-पत्र पढ़ा था। उसका उर्दू अनुवाद 'प्राचीन आर्यावर्त्त' में 'फने तहरीर' नाम से छपा। 'इन्सानी सोसायटी की बनावट' यह श्री गंगाप्रसाद जी एम० ए० की एक शोध-पूर्ण अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद था। इसका विषय वर्ण-व्यवस्था है। पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के उपनिषद्-भाष्य का अंग्रेजी से उर्दू अनुवाद मास्टर आत्माराम जी ने किया। आपके द्वारा ही पं० गुरुदत्त जी के वैदिक दर्शन पर लिखे कुछ अन्य अंग्रेजी लघु ग्रन्थों का भी उर्दू अनुवाद हुआ। ये सब अच्छे कागज पर छपे।

इसी युग में वैदिक दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित श्री कृपाराम शर्मा (स्वामी दर्शनानन्द जी) ने साहित्य-सृजन का अद्भुत कार्य किया। आपने उर्दू में सांख्य, न्याय, वेदान्त और वैशेषिक चार दर्शनों में भाष्य छापे। आपका साहित्य बड़ा लोकप्रिय था। स्वल्प शिक्षित उर्दू-पठित जनता तक वैदिक दर्शन को पहुंचाने का श्रेय आप ही को जाता है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ने ईश, केन, कठ आदि छः उपनिषदों का भी उर्दू-भाष्य किया। यह 'उपनिषद्-प्रकाश' के नाम से एक ही जिल्द में भी छापे

गये। 'उपनिषद्-प्रकाश' के हिन्दी में तो कई संस्करण निकले हैं। इस ग्रन्थ की बड़ी धूम थी। इसकी विशेषता यह थी कि गूढ़ प्रश्नों को, प्रश्नोत्तर शैली से सरल बनाकर, पाठकों को हृदयङ्गम करवाया जाए। अब यह 'उपनिषद् प्रकाश' मधुर प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित है।

स्वामी दर्शनानन्द ने मनुस्मृति का भी उर्दू-भाष्य किया। इसमें पाद-टिप्पणियां भी दी गई थीं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में 'वैदिक विवाह आदर्श' नाम का एक उत्तम उर्दू ग्रन्थ निकला। इसके लेखक श्रीमान मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी थे। इसमें विवाह के वैदिक आदर्शों पर अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण प्रकाश डाला गया। लेखक की अनुसंधान-प्रवृत्ति पर पाठक मुग्ध हो जाता है।

'संस्कार विधि' ऋषि दयानन्द की एक लोकप्रिय पुस्तक है। जब वैदिक धर्म और दर्शन का प्रचार हुआ तो वैदिक संस्कारों में भी रुचि बढ़ी। ऋषि दयानन्द के इस ग्रन्थ के उर्दू में कई अनुवाद छपे। श्री पूर्णचन्द कैरों (पंजाब निवासी), श्री देवीदास जीवालाल लाला पिण्डीदास[1] के अनुवादों के अतिरिक्त आर्य बुक डिपो लाहौर से भी एक अनुवाद छपा। इन सब में उत्तम लाला पिण्डीदास वाला संस्करण था। इस ग्रन्थ की महात्मा मुंशीराम जी और प्रो० ताराचन्द गाजरा ने पृथक्-पृथक् विस्तृत, परन्तु अत्यन्त खोजपूर्ण भूमिकाएं लिखीं।

बीसवीं शताब्दी की प्रथम दशाब्दी में 'तीन हस्तियां' पुस्तक लाहौर से प्रकाशित हुई। इसमें वैदिक धर्म, इस्लाम और ईसाई मत आदि का ईश्वर, जीव और प्रकृति के स्वरूप तथा परस्पर सम्बन्ध पर कुछ निबन्ध हैं। वेद, उपनिषद् तथा दर्शनों के प्रमाणों से परिपूर्ण तथा खोमपूर्ण तीन निबन्ध इसमें पठनीय तथा संग्रह करने योग्य हैं।

'जवाहरे जावेद' नाम से इस युग में वैदिक दर्शन पर उर्दू में एक उत्तम पुस्तक छपी। इसके लेखक प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य चमूपति जी थे। आदिसृष्टि से आज तक वैदिक दर्शन पर लिखे गये सर्वोत्तम ग्रन्थों में इसकी गणना की जा सकती है।

'वैदिक-स्वर्ग' भी आचार्य चमूपति जी का एक शोधपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें

---

१. यह एक प्रसिद्ध देशभक्त, गर्म दल के, लाला लाजपतराय के साथी थे।

वैदिक स्वर्ग-विषयक बहुत प्रामाणिक और ठोस सामग्री दी गई है। स्वर्ग क्या है? तीन लोक क्या हैं? पुनर्जन्म तथा स्वर्ग-नरक विषयक अन्य मतों के दृष्टि-कोणों की इसमें समीक्षा है। इसमें चारों वेदों से सैकड़ों मन्त्र उद्धृत किए गये हैं। प्रो० 'शरर' जी ने इसका हिन्दी अनुवाद भी किया परन्तु यह छपा नहीं।

'चौहदवीं का चांद' वैदिक दर्शन पर किए गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए पं० चमूपति जी ने यह ग्रन्थ रचा। इसमें ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वर-जीव-प्रकृति के अनादित्व, कर्मफल एवं पुनर्जन्म सिद्धांत पर मौलिक विचार दिये गये हैं। इन तीन पुस्तकों की भाषा बड़ी सजीव एवं सुललित है। दर्शन-प्रेमी पाठक इन ग्रन्थों को पढ़कर झूम उठता है। दुरूह विषयों को इतनी रोचक शैली में समझाने की क्षमता भी ऐसे विरले विद्वानों में होती है। अब इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

'उपनिषदों के राज' नाम से महात्मा नारायण स्वामी जी कृत ईशोपनिषद् के भाष्य का उर्दू अनुवाद लाहौर में छपा था। **'रमूजे मारफत'** भी इसी उपनिषद् का स्वामी वेदानन्द तीर्थ कृत उर्दू अनुवाद था। श्री स्वामी जी जहां वेद-शास्त्र के मर्मज्ञ थे वहां उर्दू के भी एक सिद्धहस्त लेखक थे।

'स्वराज्य-पथ-प्रदर्शक', 'आर्याभिविनय' पुस्तक के प्रथम खण्ड का उर्दू अनुवाद था। इसमें ५३ वेद-मन्त्रों की व्याख्या है। पाद-टिप्पणियां भी अनुवादक लाला गणेशदास जी ने दी हैं। विस्तृत भूमिका बड़ी योग्यता से लिखी है। इसकी एक भूमिका प्रसिद्ध देशभक्त डा० सत्यपाल जी ने लिखी है। यह अनुवाद जेल में किया गया था। गांधी युग में प्रथम सत्याग्रह में ये दोनों तपस्वी एक ही जेल में थे। तब जेल में ही यह अनुवाद किया गया।

इसका दूसरा खण्ड तैयार तो हो गया परन्तु छपा या नहीं, इसका मुझे प्राणाणिक ज्ञान नहीं है। **मृत्यु और परलोक** पर प्रश्नोत्तर शैली में अपने विषय की यह रोचक, सुन्दर और लोकप्रिय पुस्तक है। इसका उर्दू अनुवाद किस सज्जन ने किया, यह मुझे ज्ञात नहीं परन्तु यह लाहौर से छपा था। इसमें प्राचीन वैदिक साहित्य के आधार पर प्रमाण सहित उक्त विषय पर सरल एवं सुबोध भाषा में प्रकाश डाला गया है। इस विषय पर ऐसी दूसरी पुस्तक हिन्दी-उर्दू में नहीं है।

श्री स्वामी भोलानाथ जी ने उर्दू में सांख्ययोग आदि दर्शनों पर कई उत्तम पुस्तकें और लेख लिखे, परन्तु उनका साहित्य उपयोगी होने पर भी विशेष लोकप्रिय न हुआ, तथापि वैदिक दर्शनों के प्रचार में उनका योगदान प्रशंसनीय है।

गीता पर उर्दू में भी बहुत कुछ लिखा गया है। लोकमान्य तिलक जी का गीता रहस्य उर्दू में भी अनूदित हुआ और इसका अच्छा प्रचार हुआ। गांधी जी का ग्रन्थ भी उर्दू में छपा पर इसका वैसा प्रभाव नहीं पड़ा जैसा गीतारहस्य का। प्रसिद्ध क्रांतिवीर सूफी अम्बाप्रसाद जी ने भी गीता का उर्दू-अनुवाद किया था जो अब अप्राप्य है। श्री भाई परमानन्द जी ने भी कालकोठरी में गीता पर 'राजेगीता' उर्दू में लिखी। इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। यह उर्दू पुस्तक कभी बड़ी लोकप्रिय थी। भाई जी वैसे तो इतिहास के विद्वान् थे परन्तु दर्शन के भी एक गम्भीर पण्डित थे। पाठक उनके गम्भीर चिन्तन से अत्यन्त प्रभावित होता है।

'सबूते तनासुख' पं० लेखराम रचित उर्दू पुस्तक है। इसमें पुनर्जन्म के वैदिक सिद्धांत को युक्ति तथा प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। देश-विदेश के विद्वानों के इसमें सैकड़ों प्रमाण हैं। यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में लिखा गया था। अपने विषय की उर्दू में एक उत्तम पुस्तक है।

गुटका आकार में दीनदयाल जी भार्गव रिवाड़ी ने उर्दू में आर्याभिविनय का अनुवाद छपवाया। यह इस पुस्तक का प्रथम उर्दू अनुवाद था। यह १९वीं शताब्दी के अन्त में छपा लगता है।

एक और अनुवाद महाशय अजीजराय, धर्मकोट, जिला फिरोजपुर (पंजाब) का भी छपा था।

पं० आशुराम जी आर्य चण्डीगढ़ निवासी ने यजुर्वेद-उर्दू-भाष्य का प्रथम खण्ड छापा है। अनुवादक का स्वाध्याय विस्तृत है। वेद के लिए इनमें गहरी श्रद्धा है।

पं० आशुराम जी ने ऋग्वेद-भाष्य का प्रथम खण्ड भी छपवाया है। आपका पुरुषार्थ प्रशंसनीय है। आप चारों वेदों का उर्दू भाष्य अपने तपोबल से प्रका-

शित कर रहे हैं। पं० चमूपति जी के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ **सोम-सरोवर** और **जीवन-ज्योति** का उर्दू अनुवाद पुस्तक रूप में तो नहीं छपा परन्तु दिवंगत प्रो० कृष्ण चन्द्र जी शास्त्री सिद्धांतभूषण ने इनका उर्दू-अनुवाद बड़ी योग्यता से किया था। यह अनुवाद **रिफार्मर साप्ताहिक** में क्रमशः छपा। ये दोनों पुस्तकें **सामवेद** के मन्त्रों की सरस सुन्दर व्याख्या है।

'असबात-उल तनासुख' पुनर्जन्म तथा त्रैतवाद पर लक्ष्मीनारायण अमरोही की सुन्दर पुस्तक है। सामग्री प्रायः चमूपति जी के **'जवाहरे जावेद'** से ही ली गई है। **'फलसफाए अमाल'** कर्मफल-सिद्धांत पर उर्दू में उच्चकोटि की पुस्तक है। यह प्रश्नोत्तर शैली में है। लेखक हैं प्रसिद्ध वैदिक दार्शनिक पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय। लेखक ने यह पुस्तक हिन्दी में भी लिखी है।

उर्दू में वेद, वैदिक धर्म, वैदिक साहित्य तथा वैदिक दर्शन पर और भी छोटी-बड़ी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें छपी हैं। मैंने कुछ का यहां विवरण दिया है। **'आर्यसमाज का उर्दू साहित्य'** मेरी पुस्तक **'परोपकारी'** में क्रमशः छपी थी। यह आचार्य उदयवीर जी को बहुत अच्छी लगी थी।[1]

---

१. यह लेख आचार्य उदयवीर जी के अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए लिखा गया था। उसमें भी छपा है।

महर्षि का प्रथम ऐतिहासिक जीवन वृत्त

महर्षि दयानन्द जी महाराज के जीवन काल में ही पं० गोपालराव शर्मा फर्रुखाबाद ने ऋषि का जीवन चरित्र लिखने का पुनीत कार्य हाथ में लिया। दयानन्द 'दिग्विजयार्क' नाम से यह तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ। महर्षि के जीवन काल में पूरा न छप सका। इसी प्रकार श्री गोपालराव हरिदेशमुख न्यायाधीश ने १८८४ में अपनी पत्रिका के दो अंकों में ऋषि का जीवन चरित्र प्रकाशित किया, संयोग की बात है कि ये दोनों महानुभाव महाराष्ट्र के निवासी थे। गोपालराव हरिदेशमुख तो मराठी के सर्वमान्य प्रख्यात लेखक थे। 'लोक-हितवादी' के नाम से पर्याप्त साहित्य दे गए। उनके द्वारा मराठी भाषा में लिखा ऋषि का चरित्र अब पुनः आर्य प्रतिनिधि सभा महाराष्ट्र ने एक विशेषांक के रूप में अत्यन्त रद्दी कागज पर छापा है। यह एक अच्छी पुस्तक है। 'दयानन्द दिग्विजयार्क' कुछ कांट-छांटकर एक ही खण्ड में श्री दीपचन्द जी आर्य, देहली के ट्रस्ट ने बहुत अच्छे कागज में सजिल्द छापा है। इसका सम्पादन प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय ने किया है। यह पुस्तक हिन्दी भाषा में है।

ये दोनों कृतियां महर्षि के प्रथम जीवन वृत्त जाने माने जाते हैं। १८८७ ई० में लाला रामचन्द्र जी मेरठ के उद्योग से श्री कल्याणराव के विद्या दर्पण मुद्रणालय से 'स्वामी दयानन्द जी का हाल' पुस्तिका प्रकाशित की गई। यह पुस्तिका उर्दू में है। इसके लेखक प्रसिद्ध सुधारक व प्रभावशाली लेखक ला० कन्हैयालाल अलखधारी थे। हमारी दृष्टि में यह ऋषि का प्रथम जीवन वृत्त (जीवन चरित्र न सही, जीवन वृत्त तो है ही) कहा जा सकता है, यह उपरोक्त दो पुस्तकों के पश्चात् छापा गया, इसमें संग्रहीत सामग्री महर्षि के जीवन काल में ही छप गई थी। कैसे! ला० कन्हैयालाल जी अलखधारी एक मासिक पत्रिका 'नीति प्रकाश' निकालते थे। उसमें समय-समय पर ऋषि के बारे में, जो

कुछ लाला जी ने लिखा, उसी का संग्रह १८८७ ई० में छापी गयी इस पुस्तिका में किया गया।

इसका व्यापक प्रभाव और ऐतिहासिक महत्त्व :

लाला कन्हैयालाल अलखधारी न केवल पत्रकार व लेखक थे अपितु, बहुत निर्भीक देशभक्त, सुधारक व जाति प्रेमी थे, उनके लेखों ने जन-जागृति पैदा की। अलखधारी जी के लेखों से ही रक्तसाक्षी पं० लेखराग जी को महर्षि दयानन्द के बारे में कुछ जानकारी मिली। हम इस प्रकरण की ठोस जानकारी देने के लिए अपने पाठकों के सामने 'रक्तसाक्षी पं० लेखराम' पुस्तक की कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हैं :—

"पं० जी ने काशी से किसी का गीता भाष्य मंगवाया। गीता भाष्य पढ़ते हुए पं० जी को प्रसिद्ध सुधारक व उर्दू लेखक मुन्शी कन्हैयालाल जी अलखधारी का साहित्य देखने की उत्कण्ठा हुई, मुन्शी कन्हैयालाल का साहित्य मंगवा लिया, मुन्शी जी के ग्रंथों से ही पं० जी को महर्षि दयानन्द जी के बारे में कुछ जानकारी हुई।" ×

अलखधारी जी का जन-जागरण में अद्वितीय योगदान रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की लौह-लेखनी से लिखे गये शब्दों में उनके कार्य का मूल्यांकन पढ़िए : —

"अलखधारी के खुले स्पष्ट शब्द कुरीतियों से पीड़ित आर्य सन्तान को उत्साहित करने और उन्हें अन्धपरम्परा की कड़ी सांकलों को तोड़ने का बल प्रदान करने में बिजली का काम देते थे, किन्तु, फिर भी पुराने ढर्रे के पौराणिकों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पौराणिक गढ़ को तोड़ने के लिए वेदशास्त्र रूपी प्रबल शस्त्रों की आवश्यकता थी, जिनके चलाने में निपुण एक ही कौपीनधारी संन्यासी शताब्दियों के पश्चात् दिखाई दिया था। अलखधारी ने उसी अखण्ड शास्त्रधारी बाल ब्रह्मचारी की शरण ली, और अपने लेखों की पुष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों और लेखों का प्रमाण दिया; यही कारण था कि मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के सब चेले अन्त को ऋषि दयानन्द की पवित्र शरण में आए और आर्यसमाज के उत्साही सभासद् बने।

× द्रष्टव्य रक्तसाक्षी पं० लेखराम पृ०, १८

इसी प्रकार के सुशिक्षित युवक वीरों में से एक लेखराम था।"●

स्वामी श्रद्धानन्द इस पुस्तिका का व्यापक प्रचार चाहते थे। हमने उनकी यह चाहना पूरी कर दी है।

लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के लेखों से भी हमें मुन्शी कन्हैयालाल जी के ऋषि विशेषांक लेखों को पढ़ने व देखने की उत्सुकता पैदा हुई। यदाकदा शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्तिप्रकाश जी तथा श्री पं० निरंजनदेव जी के भाषण सुनने से भी अलखधारी जी की लेखनी को पढ़ने की जिज्ञासा तीव्रतर होती गई। १९५२-५३ ई० से इन लेखों को देखने की चाह भटकती रही १९५५ ई० से सिर तोड़ यत्न करने पर भी ये सब लेख न मिल सके।

'रक्तसाक्षी पं० लेखराम' पुस्तक लिख रहा था तो मुंशी जी का वह लेख मिल गया, जिसे पढ़कर वीर विप्र लेखराम को ऋषि दयानन्द की जानकारी मिली। इस पुस्तक का प्रकाशन हो चुकने के बाद पता चला कि मुंशी जी के ऋषि विषयक लेख पुस्तिका के रूप में भी छपे थे। इसकी खोज में भारत के कई प्रान्तों की लम्बी-लम्बी यात्रायें कीं। ईश्वर की असीम कृपा से श्री वीरेन्द्र-नाथ जी गुप्त तथा श्री राजेन्द्रकुमार जी गुप्त के स्नेह के वशीभूत होकर हमें मुरादाबाद वेद-प्रचार के लिए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सितम्बर १९८१ में यह पुस्तिका वहीं से प्राप्त हुई। इसे पाकर हमें अपार प्रसन्नता हुई।

इस लुप्त गुप्त पुस्तिका का यह हिन्दी अनुवाद पाठकों की भेंट है मुन्शी जी 'और' तथा 'व' का बड़ा प्रयोग किया करते थे। हमने इसे कुछ कम करने का यत्न किया है। उनकी शैली को भी सुरक्षित रखने का यत्न किया है। हमारे प्रयत्न में त्रुटियां भी रही होंगी परन्तु, एक ऐतिहासिक सामग्री गवेषकों व ऋषि भक्तों के समक्ष हमने प्रस्तुत कर दी है। मतांध, स्वार्थी कुछ राजनैतिक लोग कभी-कभी ऋषि दयानन्द द्वारा खण्डन पर आपत्ति करते हैं। खण्डन किसने नहीं किया! ऋषि ने कहीं भी असंसदीय भाषा का प्रयोग नहीं किया! अपने देश, जाति व मानव-समाज की दुर्दशा पर ऋषि ने रक्त रोदन किया है। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की अन्तःवेदना पढ़िए कि धर्म के

● द्रष्टव्य रक्तसाक्षी पं० लेखराम, पृ० १८-१९

नाम पर अनाचार व ठग्गी करने वालों को उन्होंने 'हरामजादे' भी लिखा है। वह नास्तिक थे परन्तु ऋषि के तेज से, विद्वत्ता, पावन चरित्र व लोक कल्याण के लिए भागीरथ प्रयास एवम् कष्ट सहन से कितने प्रभावित थे। यह पुस्तिका का एक-एक शब्द बता रहा है।

इस जीवन वृत्त का विशेष महत्त्व :

उपरोक्त दोनों जीवन चरित्र साहित्य व इतिहास की दृष्टि से उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु, श्री अलखधारी लिखित यह जीवन वृत्त तो इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि यह एक ऐसे व्यक्ति की लेखनी से लिखा गया है जो स्वयं आर्यसमाजी नहीं था। श्री गोपाल राव हरिदेशमुख व श्री गोपाल राव शर्मा दोनों आर्यसमाजी थे। श्रीमान् अलखधारी जी यद्यपि वेद विरोधी, वेद निन्दक तो नहीं थे तथापि ईश्वर विश्वास व वेदनिष्ठ भी न थे, ऐसे लेखक की लेखक से ऋषि के आचार, व्यवहार, विचार उपकार व सुधार कार्यों की प्रशंसा कोई साधारण बात नहीं। ऋषिवर के चरित्र व उपलब्धियों का मूल्यांकन करने वाले के लिए यह पुस्तिका उपयोगी ही नहीं Indispensible परम आवश्यक है।

एक अमरीकन विद्वान् गवेषक ने कुछ वर्ष पूर्व चण्डीगढ़ में पत्रों में व्यक्तव्य देते हुए कहा था कि खेद है कि हिन्दुओं ने उन्नीसवीं शताब्दी में लिखे गये महत्त्वपूर्ण ट्रैक्ट यहां (पंजाब में) नहीं सम्भाले। इस कथन में बहुत सच्चाई है। हमने परिश्रम करके जो लुप्तगुप्त सामग्री खोजी है, वह सत्यान्वेषी ज्ञान-पिपासुओं तक पहुंचाने का हमारा प्रयास जारी रहेगा।

हमने अलखधारी जी की पत्रिका 'नीति प्रकाश' की तिथियां भी साथ-साथ दे दी हैं।

इतिहास प्रेमी पाठक निम्न पंक्तियों को और ध्यान से पढ़े और प्रचारें।

(१) महर्षि के एक जीवनी लेखक महता राधाकिशन जी ऋषि के साथ डा० रहीम खां की कोठी से आर्यसमाज अनारकली को जा रहे थे। सामने से पादरी Forman फोरमैन महोदय आ रहे थे। एक अन्य व्यक्ति जो साथ थे, ऋषि से बोले "फोरमैन साहिब आप से मिलने आ रहे हैं।" पादरी साहिब ने

टोपी उत्तार कर स्वामी जी का अभिवादन किया। कुशल क्षेम पूछी। (पादरी फोरमैन लाहौर में कद की दृष्टि से ऊंचे माने जाते थे। राधाकिशन जी ने आश्चर्य से देखा कि पादरी साहिब का सिर ऋषि के कंधों तक था।● इतने ऊंचे थे वे ऋषि शारीरिक दृष्टि से। लाहौर में बहुत लोग मूर्त्ति पूजा तजकर एक ईश्वर की उपासना करने लगे। एक व्यक्ति ला० बालकराम ने तो ठाकुरों की चौकी घर से उठाकर बाजार के बीच में फेंक दी।× ऋषि की अमृत भरी वाणी के प्रभाव का ऐसा ही वृत्तान्त मास्टर शिवनारायण अग्निहोत्री की पत्रिका बरादरे हिन्द में छपा। इन्हीं मास्टर जी ने बाद में नास्तिक पंथ देव समाज की स्थापना की।

एक नई बात :

मूर्त्तिपूजकों के साथ ब्राह्मसमाजी भी ऋषि के विचारों के प्रभाव से घबराए। ब्राह्म समाज वालों ने ही तो ऋषि को आमन्त्रित किया था। पौराणिकों का विरोध बढ़ा तो ब्राह्म समाजी भी पीछे हट गये। ब्राह्म समाज वालों के लिए यह बात दुःखदायी थी कि उनके सदस्य आर्य बन रहे थे। श्री ला० काशीराम प्रधान पंजाब ब्राह्म समाज ने भी तब ऋषि के उपदेश सुने थे, उनका कथन है कि ब्राह्म समाजियों ने ऋषि के आतिथ्य से हाथ नहीं खींचा, पौराणिक उनकी निर्भीक वाणी से सत्य का मण्डन और पाखण्ड का खण्डन विशेष रूप से मूर्त्ति पूजा खण्डन सुनकर उनके घोर विरोधी बन गए। ला० काशीराम जी द्वारा वर्णित ब्राह्म समाज की यह स्थिति किसी भी जीवनी लेखक ने नहीं दी। उनका पूरा लेख भी कभी छापेंगे।+

जब जून १८७४ ई० में ऋषि काशी पधारे तो काशी नरेश से ऋषि की भेंट हुई। राजा ने आगे बढ़कर ऋषि का स्वागत किया। सोने की कुर्सी पर

● दृष्टव्य "महर्षि दयानन्द और उनकी तालीम" लेखक महता राधाकिशन, पृ० ४७५

× द्रष्टव्य महता राधाकिशन लिखित ऋषि जीवन पृ० २१८ तथा 'कोहे नूर' पत्रिका २६ जून १८७७ ई०।

+ 'प्रकाश' उर्दू साप्ताहिक का ऋषि जन्म शताब्दि विशेषांक पृ० ७-८

बिठाया। पं० ताराचरण (काशी शास्त्रार्थ के एक पण्डित) ने यह सुना तो जल-भुन गए। राजा से कहा कि तुम्हारा लोक व परलोक दोनों नष्ट हो गये। तुम्हारा तो मुंह देखना भी अब उचित नहीं है। यही काशी नरेश था, जिसने १८६९ ई० के ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में ऋषि को हानि पहुंचाने में कोई कमी न छोड़ी थी।

काशी शास्त्रार्थ के बारे यहां दो शब्द लिखना अप्रासंगिक न होगा, महर्षि दयानन्द के तेज, बल व पाण्डित्य का सामना काशी के पण्डित न कर पाए। ऋषि के अटल ईश्वर विश्वास व सत्यनिष्ठा का बखान करने में लेखनी अक्षम है। ऋषि ने एक बार नहीं, सात बार काशी पर चढ़ाई की। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने लिखा है :—"It reminds one of the meeting at Worms of Martin Luther and the learned representatives of the pope of Rome on this very point of idolatory, with, of course, one difference. At Worms Martin Luther was called by warrants to clear his position before the learned judges of christendom. Here Svami Dayananda had gone on his own accord to face the lion in his den and to bend him to the knees." योरुप में इसी पाषाण पूजा का खण्डन करने पर मार्टिन लूथर को ईसाई विद्वानों के न्यायालय में स्पष्टीकरण के लिए बुलाया गया। यहां दयानन्द स्वयं काशी में जाकर ललकारता है कि लाओ मूर्त्ति पूजा के पक्ष में कोई वेद का प्रमाण। सिंह की मांद ने जाकर उसने उसके घुटने टिका दिये।

दलीलों पै काशी को जिसने उछाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला॥
वह टूटा जो था वेद विद्या पै ताला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला॥ (चमूपति)

ऋषि ने लिखा है :—"थोड़ा सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है।"+ ऐसे सत्यनिष्ठ महापुरुष के जीवन वृत्त के स्वाध्याय से सब कल्याण मार्ग के पथिक बनें। ऐसी हमारी कामना है।

+हमने उर्दू मूल पुस्तक को सामने रखकर अनुवाद किया है। पं० लेखराम जी व मास्टर लक्ष्मण जी के ऋषि जीवन में दिये गये। 'नीति प्रकाश' के उद्धरणों तथा मूल पुस्तक में थोड़ा पाठ भेद है। भाव-भेद नहीं है।—'जिज्ञासु'

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति

हक (सत्य)

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का हाल

स्वामी दयानन्द सरस्वती कुछ दिनों से कानपुर पधारे हैं। उनका उपदेश है परमेश्वर के सिवा किसी की भी उपासना न करो और मूर्ति पूजा दूषित कर्म है और वह वेदों एवं स्मृतियों को मान्य ग्रन्थ समझते हैं। भागवत आदि पुराणों को किस्सा व कहानी बताते हैं। नगर के न्यायाधीश और कुछ राज्य कर्मचारियों के सहयोग से उन्होंने कई स्थानों पर व्याख्यान दिए परन्तु नगर के बनिए तथा महाजन उनको नास्तिक और भ्रष्ट बताते हैं।

भूतों और चुड़ैलों की पूजा सिखाने वाले, मूर्ख पूजने वालों को डरा और फुसला के स्त्री, भूमि, स्वर्ण सम्पदा, तन-मन-धन ठगते हैं और वे [1]कामरूप के जादू के मेंढे वही कुछ करते हैं, जो उनको जादू की शक्ति से सिखाते हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है 'कुएं में भांग पड़े' अर्थात् किसी ग्राम के पेयजल के कूप में किसी ने कभी भांग डाल दी जितने व्यक्ति कुएं से पानी पीते थे, वे अचेत हो गए। भारत के सागर में, नदियों में अपितु मेघ में भांग पड़ी अथवा वीर्य में, कि जो है वह दीवाना है।

जो प्राणियों को जन्म देने वाले परमेश्वर को, सृष्टि के स्रष्टा को, रचना के रचयिता को और सबके स्वामी सर्वान्तर्यामी को मानता है, वह नास्तिक एवं भ्रष्ट है तथा जो पाषाण के घड़ने वालों और ठठेरों के द्वारा बनाए खिलौनों से अबोध बालिकाओं के समान क्रीड़ा करते हैं और लिंग तथा योनि को पूजते हैं और ताजियों से कामनाओं की पूर्ति की याचनाएं करते हैं तथा शेख सद्दू एवं

---

१. कामरूप (असम) शब्द प्रतीत होता है। यहां यह शब्द पढ़ा नहीं गया।
—जिज्ञासु

मकनपुर वाले मृतकों को कब्र पर जा के जात को देते हैं और कल्पित किस्सों एवं कहानियों में विश्वास करते हैं। श्री कृष्ण पर रंगरलियों, चोरी एवं छल छद्म का दोष लगाते हैं। वे उत्तम, भक्त व सज्जन हैं। ठीक है नटकटों की सभा में नाक वाला लज्जित होता है।

सच्च मानिए, जिनके कहने पर चलते हो, वे तुम्हारे धर्म व संसार के (लोक तथा परलोक के) शत्रु हैं। यदि मित्र हैं तो मूर्ख मित्र हैं। यह ब्रह्मस्वरूप आत्मा रूप निष्कलंक अवतार है।

खेद है कि सांसारिक व्यक्ति जो भयानक एवं रोचक बातें कहे, वह मधुर लगे तथा सत्य कटु हो। भारत के लोग मूर्तिपूजा में भी पूर्ण नहीं हैं, यदि पक्के पत्थर से बने होते तो जब महमूद गजनवी व पितृ हत्यारे आलमगीर औरंगजेब ने उनकी मूर्तियों को तोड़ा था तब उससे लड़ते और जिस प्रकार उसने भारत के मन्दिर भ्रष्ट किए थे, उनके पूजा-स्थलों को भूमि पर बिछा देते।

प्रतिदिन सहस्रों हिन्दू धर्म परिवर्तन करते हैं और जो हिन्दुपन का दावा करते हैं, वे मुसलमान मृतकों की कब्र से नाक रगड़ते हैं। संयोग से जो एक ईशोपासक उनके नगर में कहीं से आ विराजा है, उसको नास्तिक तथा भ्रष्ट बताते हैं। "बबीं तफावते राज अज कुजा अस्त ता ब कुजा" देखिए मार्ग में कितना अन्तर है कहां से कहां तक।

जो जिसको पूजता है वह उसी के समान बन जाता है। हिन्दू मूर्तियों की पूजा करने से, मूर्तियों के समान अपने स्थान से सिरक नहीं सकते हैं, जो अन्याय, अत्याचार इन पर होता है, मूर्तियों के समान शिरोधार्य करते हैं (सह लेते हैं)। भारत के मूर्तिपूजकों ने दूसरे देश की एक इंच भूमि नहीं हथयाई। न ही किसी की एक फूटी कौड़ी ली है। अपनी दारा, धरती व धन सबको देते रहे। यह सब बड़ाई इनको मूर्तिपूजा से प्राप्त हुई। यदि इनकी ऐसी ही बुद्धि रही तो कुछ ही दिन में इनका नाम व चिह्नमात्र भी नहीं रहेगा।

नसीहते कुन्मत बिशनो व बहाना मगीर
हर आंचे नासहे मुशफक बगोयदत्त बपजीर

तुझे एक सीख देता हूं। सुन और बहाना मत बना। जो कुछ भी तुझे हितकारी उपदेशक कहे, तू उसे मान ले।

२. दयानन्द सरस्वती जी जो कि अपने युग में अद्वितीय विद्वान्, ऊंचे आचरण वाले ईशोपासक हैं। आजकल कुछ हिन्दू जिनके सिर पर सींग तथा पीठ पर पूंछ नहीं है, उनको रूसी किंवा जर्मन बताते हैं। खेद ! 'आदमियां गुम शुदंद मुल्कि खुदा खर गरिफत' : व्यक्तियों का लोप हो गया। परमात्मा की सृष्टि गधों ने सम्भाल ली। कल्पना करो, यदि वह रूसी ही हैं हिन्दुओं को हिन्दू धर्म का उपदेश देते हैं। पत्थर एवं पीतल नहीं पुजवाते।

१८७४ ई० की पत्रिका से, पृ० १४

३. पता चला है कि जो उपदेश दयानन्द सरस्वती जी ने हाथरस में लोगों को दिया। वहां के ब्राह्मण भयभीत हो गये : "इन्होंने हमारी रोटियों को खोया और हमारी चिड़ियों को जाल में से निकालता है।" खेद है ! कि स्वार्थी अपने लाभ के लिए पशु को मनुष्य बनने नहीं देते हैं अपितु, मनुष्यों को पशु बनाया करते हैं। हिन्दू प्रशंसनीय हैं कि उनकी दारा, धरती व धन के ब्राह्मण, मुसलमान एवं ईसाई सब इच्छुक हैं अर्थात् वे अपना अधिकार समझते हैं। इन सब के होते हुए भी ये अभी तक मरे नहीं। —१८७४ ई० की पत्रिका से, पृ० १४१

४. सूचना मिली है कि महाराज बम्बई में उपदेश करते हैं कि (१) मूर्तियों को न पूजो। (२) वेदों व शास्त्रों के सामने पुराण कुछ भी नहीं। (३) विधवाओं का पुनर्विवाह करो। (४) जाति भेद मत रखो। (५) अवतारों को भी भगवान के अन्य मनुष्यों के समान जानो। जब पुरुष ३५ वर्ष का व स्त्री २२ वर्ष की हो तब उनका विवाह हो। ईश्वर का उपदेश देने वाले इस भले पुरुष के विरोध के लिए दो सौ पण्डित एकत्रित हुए ताकि उसके वचनों का वेद के आधार पर खण्डन करें। —१८७५ ई० को पत्रिका से, पृ० २५

इससे आगे के तीन पैरा लाला अलखधारी जी ने 'मौल्लफ' लिखकर एक टिप्पणी के रूप में दिये हैं।

मनुष्य को बुद्धि एवं ज्ञान इन्द्रियां इसलिए प्रदान की गई हैं ठीक-अठीक, सत्य-असत्य, हानि-लाभ, व्यक्ति व समाज के हित का विवेक करे व सुझावे।

इसलिए नहीं कि अल्पज्ञ को सर्वज्ञ समझ उसके पीछे भेड़-चाल चलते हुए कूप में गिरें। वेद सद् ग्रन्थ हैं (माकल पुस्तक हैं) उनमें स्वामी दयानन्द जी के कथन के विपरीत कदापि न होगा। यदि किसी स्वार्थी ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए कोई ऋचा घड़कर पाषाण पूजा के लिए मिला दी हो तो कोई अनहोनी बात नहीं, क्योंकि चार वेद संहिताएं कहीं प्राप्य नहीं[1]। सम्भव है कि कोई मन्त्र बना कर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए व्यास का वचन कह दे। यदि ऐसा ही हो तो व्यास भी एक मनुष्य ही था और जितनी इन्द्रियां मनुष्य रखते हैं उतनी ही वह भी रखता था। यदि उसने अपने समय के अनुसार कोई सम्मति लिखी हो तो हमारे लिए आवश्यक नहीं कि उसके युग की सम्मति पर आचरण करें। सहस्र वर्ष पूर्व सारे संसार के मनुष्य धनुष-तीर से युद्ध करते थे और भीष्म पितामह को पांडवों के कुल के व्यक्ति अपना गुरु समझते थे। अब तो इस काल में इसमें प्रवीणता की तनिक भी उपयोगिता व महत्व नहीं। तोप के एक गोला से एक सौ धनुषधारी आचार्यों के चिह्न मात्र का भी पता न रहे। अतः आज के मनुष्य को इस विषय में विवेक से काम लेना चाहिए कि प्रतिमाओं को परमात्मा पर प्रभुत्व प्राप्त है किंवा परमात्मा को प्रतिमाओं पर। यदि मूर्तियां परमात्मा पर आधिपत्य रखती हैं तो आत्मा व परमात्मा, ईश्वर व परमेश्वर को पुस्तकों से निकाल दो और इन शब्दों का वाणी से उच्चारण तक न करो। जिस मूर्ति को वे दो सौ पंडित निश्चित करें, उसी को पूजो। करोगे वही जो तुम्हारे पिता, पितामह करते रहे परन्तु इतना कहना कर्त्तव्य समझता हूँ कि

---

१. श्री कन्हैया लाल अलखधारी अरबी, फारसी, उर्दू के विद्वान् थे। उन्हें वैदिक साहित्य के पठन-पाठन का सौभाग्य व अवसर न मिल सका। जैसा उस युग में प्रचार था। वे भी यही समझते थे कि वेद संहिताएं उपलब्ध नहीं। उनका लोप हो चुका है। निष्पक्ष पश्चिमी विद्वानों ने भी यह स्वीकार किया है कि आर्य जाति में ही यह विचित्र बात देखी गई है कि भारत के तपस्वी ब्राह्मणों ने वेद की रक्षा के लिए वेद संहिताएं कण्ठ करने की अखण्ड परम्परा चलाई। पिता से पुत्र ने वेद सीखा और गुरु से शिष्य ने। किसी ने एक वेद को कण्ठ किया तो किसी ने दो वेद कण्ठ किए। किसी ने तीन वेद कण्ठ किए तो किसी ने चारों वेद कण्ठ किए। ऐसे विद्वान अब भी दक्षिण में कहीं-कहीं हैं।

सब हिन्दू मिलकर एक प्रतिमा निश्चित कर लें और सब उसी की ओर ध्यान दें। भिखारियों की भांति वसन्त व दशहरा को घर-घर मत फिरो।

संवाददाता की दयानन्द सरस्वती जी, सैयद अहमद खां साहिब एवं ब्रह्म-समाज के नेताओं से कभी भेंट नहीं हुई और न ही पत्र व्यवहार है परन्तु, उनके लेखों व व्याख्यानों का ज्ञान है। प्रायः समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में उनकी सम्मति अंकित होती है। बिना अतिशयोक्ति के कहता हूं कि जो हिन्दू अपने आपको प्राचीन शास्त्रों का अनुयायी रखना चाहते हैं, वे यदि किसी को गुरु बनाना चाहें अथवा किसी से किसी समस्या का, शंका का समाधान कराने का विचार हो अथवा किसी से उपदेश लेना चाहें किंवा किसी की वाणी सुनना चाहें—एकमेव दयानन्द सरस्वती से तथा जो माकूल पसन्द हो और आजाद तथा उसको ब्राह्मसमाजियों से सम्पर्क करना चाहिए। मुसलमानों के नेतृत्व के लिए प्रशंसनीय सैयद अहमद साहिब के समान न पहले कोई हुआ था और न ही वर्तमान में कोई उनके समान दूसरा है। यह निश्चित है कि उनकी शुभ सम्मति निर्णायक है और जितने हिन्दू व मुसलमान नेतृत्व का दम भरते हैं वे हमने महाराष्ट्र, तमिलनाडु व केरल में ऐसे तपस्वी ब्राह्मणों के दर्शन किए हैं। इन्हीं के कारण वेद का एक-एक अक्षर और एक-एक मात्रा आज तक सुरक्षित चली आई है।

यहां यह भी स्मरण रहे कि व्यास जी ने चार वेद संहिताओं को एकत्रित किया या सम्पादित किया, यह सब झूठ है। व्यास शब्द का अर्थ ही बता रहा है कि उन्होंने चारों वेदों का गम्भीर स्वाध्याय किया। वह वेदों के आर-पार हो गये। अतः अपनी ज्ञान-साधना व पांडित्य से व्यास कहलाए। वेद ईश्वर का ज्ञान है। ईश्वर अनादि है। अतः वेद भी अनादि ज्ञान है। परमात्मा की सृष्टि का नियम है कि पहले आविष्कार करता है फिर आवश्यकता पैदा होती है। यथा सूर्य को आंख से पहले बनाया गया। भूख-प्यास से पहिले अन्न व जल बनाया गया। ऐसे ही मनुष्यों के (Instinct of Curiosity) जिज्ञासा से पूर्व परमात्मा की ओर से ज्ञान का प्रकाश भी होना चाहिए। परमात्मा ने जीव के कल्याण के लिए क्या नहीं दिया ? सब कुछ दिया है तो यह कैसे हो सकता है कि वह दयालु ईश्वर बुद्धि के लिए ज्ञान न दे ?

नेतृत्व के जाल के नीचे मार्ग-भ्रष्ट करने वाला दाना रखते हैं। घोर रूढ़िवादी, केवल धन के लोभी हैं, कामुक हैं, छलिए हैं, झूठे, बातूनी, बुद्धिहीन ऐसे व्यक्तियों से सम्पर्क करना आत्महत्या करना है।

६. एक सप्ताह से अधिक हुआ है कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर में पधारे हैं। ये महानुभाव साधु वेश रखते हैं और नगर-नगर, डगर-डगर घूम-घूम कर उपदेश देते हैं कि चारों वेद ईश्वर की वाणी हैं। सारे संसार का सद्ज्ञान इनमें हैं। कोई बात ऐसी नहीं, जो इनमें नहीं, जो इनसे बाहर हो। प्राचीन भारत के निवासी प्रत्येक विद्या व कला में प्रवीण थे। रेल चलाना ये जानते थे। तार से समाचार ये पहुंचाते थे। अमरीका का ज्ञान उनको था। वैद्यक, राजनीति, अर्थशास्त्र, तर्क शास्त्र के ज्ञानी थे। इनका पुष्कल साहित्य नष्ट हो गया है। फूट ने इनकी ऐसी दशा कर दी है कि जो हम देख रहे हैं। वेद में मूर्तिपूजा का कहीं उल्लेख नहीं। न ही चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु आदि की पूजा का निर्देश है। जो लोग ऐसा समझते हैं वे बड़ी भूल-भुलैयां में हैं। स्वामी जी वेद का भाष्य भी लिख रहे हैं। इसके कई भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं। उनके निकट जो वेद का धर्म है, वही सत्य है। हमने स्वामी जी के दो-चार व्याख्यान सुने हैं। वास्तविकता तो यह है कि स्वामी जी बड़े उदार हृदय हैं और आज भारत में उनके समान वेदों का दूसरा कोई विद्वान् नहीं सुना जाता परन्तु, हम यह नहीं कह सकते कि मन्त्रों की जो व्याख्या वे करते हैं, वही ठीक है क्योंकि और पुस्तकों के जो भाष्य अन्य आचार्यों ने किये हैं, स्वामी जी का भाष्य उससे भिन्न हैं। स्वामी जी भारत के नवपठित वर्ग से इस बात में सहमत हैं कि जाति-पांति कुछ नहीं है। उनके निकट ब्राह्मण वह है जो ब्राह्मणों के काज करे, अन्यथा वह शूद्र से हीन है और शूद्र के अर्थ सिवाय अशिक्षित के कुछ और नहीं है। परस्पर खानपान के जो प्रतिबन्ध इस देश में, जो आजकल प्रचलित हैं और एक समय से यह प्रतिबन्ध चला आ रहा है। ये प्रतिबन्ध उनकी दृष्टि से व्यर्थ है, अधर्म है। वेदों में इस रिवाज का कोई संकेत नहीं। विधवाओं का विवाह कर देना उचित है। यह कोई दोष युक्त कर्म नहीं। छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं का विवाह नहीं करना चाहिए। सभ्यता की इन बातों ने ब्राह्मणों को स्वामी जी का शत्रु बना दिया है परन्तु उनको इसकी

तनिक भी चिन्ता नहीं। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु कटिबद्ध हैं। जो लोग इस देश के हित चिन्तक हैं तथा हृदय से इसकी उन्नति के इच्छुक हैं, उनको उचित है कि तन-मन-धन से स्वामी जी का सहयोग करें।

[आगे फिर मौल्लफ (सम्पादक) लिखकर लाला कन्हैयालाल अलखधारी जी ने अपनी एक टिप्पणी दी है। —जिज्ञासु]

स्वामी जी के विचारों व कथन की प्रशंसा हमने अब तक इस कारण नहीं की थी कि मूर्ख एवं मूर्खों के अनुयायी लुधियाना में कहते थे कि जैसे कन्हैयालाल अधर्मी[1] है, वैसे ही उनके मित्र। स्वामी जी पादरियों की ओर से हिन्दुओं को मार्ग-भ्रष्ट करने के लिए कन्हैयालाल के निमन्त्रण पर आए हैं। ऐ गोबर खाने वालो! हाय उनकी पूंछ में नाक रगड़ने वालो! देखो, पं० मुकन्दराम साहिब जो एक सम्पादक 'सच्चे' अखबार लाहौर के हैं, वह उनका कैसा गुणगान करते हैं। तुम लोग मेरे तथा श्रेष्ठ मार्ग दर्शाने वाले के शत्रु हो परन्तु हम लोग तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। दुराचारियों को भले पुरुष और गधों को मनुष्य बनाने वाले हैं। हम भारत का कल्याण चाहने वाले हैं।[2] सुनो, स्वामी जी के उपदेश को और धिक्कारो उनको, जो तुमको एक सच्चिदानन्द परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की पूजा करने के लिए प्रेरित करते हैं।[3] उनको कुछ भी मत दो परन्तु उनको खाने के लिए गोबर दो। (२४ मई १८७७ की पत्रिका से)

७. 'खैर खाहे हिन्द' पत्रिका से पता चला है कि काशी के एक गुरुजी कन्याओं को पढ़ाते हैं। एक कन्या से[4] .....कुकर्म प्रमाणित होने पर पांच वर्ष के लिए कारागार में भेजे गये हैं।

---

१. मूल पुस्तिका में लामजहब शब्द का अनुवाद हमने अधर्मी किया है। इसका अर्थ नास्तिक भी हो सकता है। अलखधारी नास्तिक ही तो थे।
—जिज्ञासु

२. पं० लेखराम जी के ऋषि जीवन के हिन्दी अनुवाद में इन पंक्तियों का अनुवाद ठीक नहीं छपा।

३. मूल पुस्तिका में शब्द रहबरी करते हैं। इसका अर्थ नेतृत्व करते हैं। हमने भावार्थ दिया है जो अत्यन्त उपयुक्त है। —जिज्ञासु

४. रिक्त स्थान हमने छोड़ा है। जानबूझ कर छोड़ा है। पाठक समझ लें।
—जिज्ञासु

[आगे पुनः दो पैरे मौल्लफ (सम्पादक) लिखकर लाला कन्हैयालाल अलखधारी जी ने टिप्पणी रूप में दिये हैं। —जिज्ञासु]

लुधियाना के समीप एक व्यक्ति जिसकी पूंछ के नीचे सिरी भी लगती है और पण्डित उसकी उपाधि है। उसने अपनी विधवा चेली से एक बालक को जन्म दिया था। परन्तु न्यायालय ने उत्तर न मांगा कि विधवा थी। ये दोनों घटनाएं सिद्ध करती हैं कि कृष्ण लीला सुनाने वाले, प्रतिमा पूजन सिखाने वाले, नक्षत्रों की दिशा से डराने वाले, नरक-स्वर्ग, अगले जन्म के नाम पर छल करने वाले, अंगदान, स्त्री दान मांगने वाले, भयानक तथा रोचक कथाएं सुनाने वाले, ढोंग रचकर अपने को सन्त-महात्मा जताने वाले ये सब लोग इन्हीं दो के बाप हैं। प्रत्येक जाति (बिरादरी) के हिन्दू अशिक्षित रहते हैं। इन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि वेदों, शास्त्रों व स्मृतियों में क्या लिखा है। इनको दुष्ट हरामजादे ठगते हैं[1] और जो निस्वार्थ उपदेश करते हैं, उनको नास्तिक, भ्रष्ट बताते हैं तथा उनके लेखों व व्याख्यानों में दोष निकालते हैं ताकि असभ्य जन उनके जाल से निकल न जावें तथा उनके सिर पर जूते न लगावें।

दयानन्द सरस्वती जी ने उसी पत्रिका में स्पष्ट किया है कि ब्रह्मा पर अपनी पुत्री से व्यभिचार का जो दोष पतितों ने लगाया है उसका यह अर्थ है कि प्रजापति सूर्य का नाम है। ब्रह्मा ने सूर्य को उत्पन्न किया। सूर्य से उषा हुई, उसका नाम पुत्री रखा। जब सूर्य की किरणें सब दिशाओं को फैली तो दिन हुआ। किरणों का नाम वीर्य और दिन पुत्र के समान है। कवि जिस ओर ध्यान करते हैं उसी प्रकार का विषय बांध देते हैं।[2]

---

१. हमने इस मूल पुस्तिका का शब्द वैसे का वैसे ही दे दिया है। इसे बदलना उचित नहीं समझा। —जिज्ञासु

२. विस्तार के लिए महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का 'प्रामाणिक व अप्रामाणिक' ग्रन्थ प्रकरण पढ़िए। —जिज्ञासु

धर्मवीर पं० लेखराम और उनका बलिदान

पं० लेखराम जी का जन्म ८ चैत्र १९१५ विक्रमी (१८५८ ई०) में हुआ। आप सैदपुर जिला झेलम (पश्चिमी पंजाब) में जन्मे। १८५० ई०—१८६० ई०, इस एक दशाब्दि में भारत में कई नर नामी वीर, जन नायक, नेता व विद्वान् पैदा हुए। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के हुतात्मा खुशीराम जी का जन्म भी सैदपुर में ही हुआ था। वह भी दृढ़ आर्यसमाजी थे। पं० जी के पिता का नाम पं० तारा सिंह जी, दादा का नाम पं० नारायण सिंह जी और चाचा का नाम पं० गंडाराम जी था।

पं० जी का नाम लेखराज रखा गया। हमने अपनी पुस्तक रक्तसाक्षी में इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। लेखक के पास पं० जी की कई पुस्तकें हैं, जिन पर उनका नाम लेखराज छपा है। जब पं० जी अधिक प्रसिद्ध हुए तो लेखराज के बजाए लेखराम के नाम से लिखने लगे। लेखराज हो या लेखराम इसमें तो दो मत नहीं कि उन्होंने अपने माता-पिता द्वारा दिये गए नाम को सार्थक कर दिखाया।

आर्यसमाज के इतिहास में पं० जी का स्थान बहुत ऊंचा है। मिर्जाई लोग बड़ा दम्भ करते हैं, जब ये कहते हैं कि हम दूसरों के धर्माचार्यों का सदा आदर करते हैं। उन लोगों ने पं० जी की हत्या ही नहीं करवाई, इनके संस्थापक ने पं० जी का नाम भी बहुत अशिष्टता से लिखा है—

"लेखू मरा था कट कर जिसकी दुआ से आखिर
घर-घर पड़ा था मातम वह मीर्जा यही है"[1]

मुगलकाल के बाद धर्मरक्षा के लिए इस्लाम के नाम पर इस्लामी छुरी से वीर गति पाने वाली प्रथम विभूति लेखराम ही थे। हां! यह ठीक है कि

---

१. द्रष्टव्य दुर्रे समीन लेखक मिर्जा गुलाम अहमद साहब

अब मुसलमानों ने इन लोगों को इस्लाम से बहिष्कृत कर दिया है। यह भी कहना व मानना झूठ है कि इस्लाम तलवार से नहीं फैला। मिर्जा गुलाम अहमद ने पं० जी को मौत की धमकी देते हुए एक लम्बी फारसी कविता लिखी थी, उसकी एक पंक्ति है—

"बतरस अज तेगे बुराने मुहमद"

अर्थात् मुहमद की तेज काटने वाली तलवार से डर।

इस युग में महर्षि दयानन्द के बाद विधर्मियों की शुद्धि के लिए सबसे अधिक उत्साह दिखाने वाले व उद्योग करने वाले लेखराम ही थे। इस पुनीत कार्य के लिए उन्होंने अपना जीवन दे दिया। आज सारा हिन्दू समाज लेखराम जी के कार्यक्रम को अपना रहा है परन्तु खेद की बात है कि आर्यसमाज के बाहर कहीं भी किसी हिन्दू के घर या किसी मन्दिर में आपको पं० लेखराम जी का चित्र न मिलेगा।

सत्यनिष्ठ धर्मवीर वीर विप्र लेखराम जी का चरित्र सब मानवों के लिए बड़ा प्रेरणाप्रद है। युवक-युवतियों को विशेष रूप से उनके जीवन से स्फूर्ति प्राप्त करके देश, धर्म की रक्षा के लिए आगे आना चाहिए। शूर शिरोमणि पं० लेखराम के कृतित्व व व्यक्तित्व पर हम जितना भी गर्व करें वह थोड़ा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उनके बलिदान पर बहुत सुन्दर व मार्मिक शब्दों में कहा था कि वह संस्था व संघठन धन्य है, जिसके नेताओं को अपने सिद्धांतों की सत्यता सिद्ध करने के लिए अपने रक्त की मुहर लगा कर साक्षी देने का सौभाग्य प्राप्त होता।

आर्य सन्तान को यह नहीं भूलना चाहिए कि विदेशी शासकों के पोषक व प्रबल समर्थक इन्हीं मिर्जा गुलाम अहमद ने अपनी एक पुस्तक में हिन्दुओं को "सैदे करीब"[1] लिखा है। इसका अर्थ है कि हिन्दू तो मुसलमानों की पकड़ में शीघ्र आने वाला शिकार है। अभी पिछले दिनों दैनिक अंग्रेजी ट्रिब्यून में मिर्जाईयों ने एक लेख में यह भ्रामक प्रचार कराया कि वे तो सदा गोरक्षा के पोषक रहे हैं। गोरक्षा के तो पोषक, प्रचारक ये रहे हैं, गोरक्षा का सदैव विरोध

---

१. द्रष्टव्य 'अजालय ओहाम' लेखक मिर्जा गुलाम अहमद

करते रहे हैं। अहमदी महाजर के नाम से लिखने वाले मिर्जाई की पुस्तकें पढ़िए उसने महर्षि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, देश-भक्त क्रान्ति वीर हरदयाल, महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय जी आदि महापुरुषों की (और सारी कांग्रेस पार्टी की) गौरक्षा के लिए निन्दा की है।

पं० लेखराम अडिग ईश्वर विश्वासी, महान मनीषी, स्पष्ट वक्ता, आदर्श धर्म प्रचारक, त्यागी, तपस्वी, गवेषक लेखक और अत्यन्त पवित्र आत्मा थे। आप फारसी का एक पद सुनाया करते थे और लेखों में भी उद्धृत किया है—

कुफर अस्त दर तरीकते मा कीना दाशतन।
आईने मास्त सीना चो आईना दाशतन॥

अर्थात् हमारे दृष्टिकोण से द्वेष रखना अधर्म है। हमारी मर्यादा और हमारा नियम तो हृदय को दर्पण के समान स्वच्छ रखना है।

महर्षि दयानन्द के दिव्य-दर्शन

श्री कन्हैयालाल अलखधारी के साहित्य से पं० जी को ऋषि दयानन्द के बारे में जानकारी मिली। आपने १७ मई सन् १८८१ ई० को अजमेर में ऋषि के दर्शन किये। ऋषि जी से शंका का समाधान किया। पहले अपने आपको ब्रह्म मानते थे, अब सत्य-असत्य को जानकर जीव बन गए। भ्रमजाल तार-तार हो गया। लेखराम को पता चल गया कि वह जीव ही है। पाठकों की जानकारी के लिए यहां यह भी लिख दें कि मुंशी कन्हैयालाल जी नास्तिक थे परन्तु देश व जाति के लिए उनके हृदय में तड़प थी। इन्हीं के द्वारा लिखा 'स्वामी दयानन्द का हाल' महर्षि दयानन्द का प्रथम जीवन वृत्तांत है, जिसे सम्पादित करके हमने हिन्दी में छपवा दिया है। इस दुर्लभ पुस्तिका की खोज में हमने २६-२७ वर्ष निरन्तर यत्न किया। जिस पुस्तक ने नर रत्न लेखराम दिया, उसका महत्व पाठक स्वयं ही समझ सकते हैं। एक नास्तिक ऋषि का गुण-कीर्त्तन करता नहीं थकता, यह कोई साधारण बात है?

पं० जी के दो संस्मरण

'वैदिक धर्म में परमेश्वर पिता ही नहीं, माता, बंधु व सखा भी है'—एक बार पं० जी ने आर्यसमाज पेशावर के मन्त्री श्री बाबू सुर्जन मल जी के साथ

अफगानिस्तान में ईसाई मत के प्रचारक पादरी जोक्स से पेशावर छावनी में भट की। पादरी महोदय ने कहा कि बाईबल में ईश्वर को पिता कहा गया है। ऐसी उत्तम शिक्षा अन्यत्र किसी ग्रन्थ में नहीं।

इस बार पं० जी ने कहा, ऐसी बात नहीं है। वेद और प्राचीन आर्य ऋषियों की बात तो छोड़िए, अभी कुछ सौ वर्ष पूर्व ही श्री नानक देव जी महाराज ने भी बाईबल पढ़कर शिक्षा दी है। पादरी ने पूछा कहां है ? पं० जी ने कहा देखिए—

तुम मात पिता हम बालक तेरे।
तुमरी किरपा सुख घनेरे ॥

यहां ईश्वर को पिता ही नहीं, माता भी कहा गया है। यह शिक्षा तो बाईबल से भी बढ़-चढ़ कर है। माता का प्रेम पिता के प्रेम से कहीं अधिक होता है सम्भवतः इसी कारण ईसा मसीह को यूसफ पुत्र न कह कर इवने मर्यम (मर्यम पुत्र) कहा जाता है। यह सुनकर पादरी महोदय निरुत्तर हो गये।

ऐसे ही एक बार अजमेर में पं० जी की ग्रे (Grey) नाम के एक पादरी जी से भेंट हुई। उसने कहा, तुम लोग बाईबल से चोरी करके कहते हो कि यह वैदिक शिक्षा है जबकि वेद में ईश्वर विषयक कोई अच्छी चीज नहीं है।

पं० जी ने कहा यदि कोई आर्य ऐसा कहता किंवा करता है तो मैं उसे छलिया समझता हूं। आप कृपया कोई ऐसी शिक्षा बतावें जो वेद में न हो और आर्य लोग उसे वेद की बताते हों तथा वास्तव में वह बाईबल की हो।

पादरी जी ने कहा ईश्वर को पिता कहना केवल बाईबल की शिक्षा है। तुम भी हमारी देखा-देखी परमात्मा को पिता कहते हो, भला बताओ तो सही कि वेदों में ऐसा कहां है ?

इस पर पं० जी ने कहा कि यह वैदिक शिक्षा है। पवित्र वेद की निम्न ऋचा पं० जी ने पढ़कर सुनाई, ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भवुनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्न ध्यैरन्त ॥[1]

इस ऋचा में परमात्मा को बंधु, पिता, माता, सब कार्यों को पूर्ण करने

१. द्रष्टव्य यजुर्वेद ३२-१०

वाला, सब लोक मात्र स्थान व जन्मों को जानने वाला कहा है।

पं० जी के विचार सुनकर पादरी महोदय कुछ उत्तेजित हुए परन्तु कुछ उत्तर न बन पाया।

स्वाध्यायशील सज्जन जानते हैं कि कल्याणी पावमानी वेदवाणी में इस आशय की और भी अनेक सुन्दर ऋचायें हैं यथा—त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभुविथ। अधाते सुम्नमीमहे।[1]

वेद विद् स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने इसका भावार्थ ऐसे दिया है, 'सबको बसेरा देनेहारे! तू ही हमारा पिता है। नाना कर्म प्रवीण! तू हमारी माता है। हम तेरी मंगल कामना की कामना करते हैं।[2]

सहृदय पाठक यहां यह भी ध्यान दें कि पं० जी के मन में असत्य के लिए, छल के लिए, कपट के लिए कितनी अश्रद्धा व आक्रोश है। पादरी ग्रे जी को पं० जी ने किस उग्रता में यह कहा कि यदि कोई व्यक्ति बाईबल की शिक्षा को (जो वेद में न हो) वेद की शिक्षा कहे तो वह आर्य नहीं, छलिया है।

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बौद्ध वर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥

—महाकवि 'शंकर'

पं० जी का एक ऐतिहासिक लेख

पं० जी ने अपने स्वल्प जीवन काल में कई रचनात्मक कार्य किए। महर्षि दयानन्द जी के जीवन-चरित्र की सामग्री एकत्रित करने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। लम्बी-लम्बी यात्राएं की। जीवन-चरित्र का बहुत सा भाग वह स्वयं लिख चुके थे। ऋषि-जीवन लिखने का पवित्र कार्य जब आपने अपने हाथ में लिया तब आपने एक भावपूर्ण ऐतिहासिक पत्र आर्यजगत् के नाम लिखा। यह पत्र पठनीय है। हम वर्षों से इसकी खोज में थे।

---

१. द्रष्टव्य ऋग्वेद ८-९८-११

२. द्रष्टव्य स्वाध्याय सन्दोह, पृष्ठ ३३८, चतुर्थ संस्करण

'स्वामी जी की स्वानेह उमरी' शीर्षक से यह पत्र आर्यसमाज के कई तत्कालीन पत्रों में छपा था। इसका हिन्दी अनुवाद यहां देते हैं—

"मैंने ११ दिसम्बर १८८८ ई० से ईश्वर के आश्रय होकर श्री स्वामी जी महाराज के जीवन-चरित्र का कार्य आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) १ के आदेश अनुसार आरम्भ कर दिया है अर्थात् मैं ११ दिसम्बर १८८८ ई० प्रातः की गाड़ी में लाहौर से मथुरा जाऊंगा, जहां से कार्य आरम्भ करूंगा। मेरे नाम सब पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर होना चाहिए। उनके जीवन सम्बन्धी सब वृत्तांत, घटनाओं व उपलब्धियों[1] का संग्रह करना आप महानुभाव जानते हैं कि कैसा कठिन कार्य है। परन्तु यह कार्य केवल आर्य महानुभावों के भरोसा पर उठाया है एवं समाजों से ही इस विषय में बहुत कुछ सहयोग की आवश्यकता है। इस कारण सब बन्धुओं से विनीत बिनती है कि जिस समय की और जिस प्रकार की एवं जिस नगर, वन अथवा ग्राम[2] आदि के वृत्तांत स्वामी जी महाराज के सम्बन्ध में जिस भाई को ज्ञात हों, उनसे मुझे अवगत करें। मैं जहां तक सम्भव हो सका आज से दो वर्ष के अन्तर्गत सारे आर्यवर्त्त का भ्रमण करूंगा तथा जहां-जहां किसी प्रकार के वृत्तांत जिस महानुभाव के पास पता लगेगें, मैं उनकी सेवा में उपस्थित होकर लिख लूंगा परन्तु फिर भी सावधानता[3] अट (शर्त) है। आप महानुभावों से आशा है कि अवश्य मेरी विनती पर ध्यान देंगे।

विनीत :—

दिसम्बर १०, १८८८, लेखराम आर्य पथिक, द्वारा
मन्त्री, आर्यसमाज, मथुरा नगरी

ऋषि का जीवन चरित्र लिखने वाले पं० लेखराम का हृदय श्रद्धा से भर-

---

१. मूल में उर्दू के शब्द हैं 'तमाम वा कमाल हालात और वाक्यात'
—जिज्ञासु

२. यह शब्द 'आर्य समाचार' मेरठ में अशुद्ध छपा है। पढ़ा नहीं जाता; हमारा विचार है 'देहात' शब्द होगा जिसका पर्याय ग्राम हमने दिया है।
—जिज्ञासु

३ यह शब्द हमने जोड़ा।
—जिज्ञासु

पूर था, वहां सत्यनिष्ठा से विभूषित था। धर्म प्रचार करते हुए, जाति सेवा करते हुए, सोते-जागते, चलते-फिरते आर्य पथिक की सदा यही मनोवृत्ति रही "फिर भी सावधानता अट (शर्त) है।" अपने प्राणों की रक्षा के लिए तो वह कभी भी सावधान नहीं रहे। वह प्राणों का निर्मोही आग्नेय पुरुष था परन्तु गवेषक, लेखक, प्रचारक, सुधारक के रूप में 'सावधानता' उनकी अट रही। लेखराम के द्वारा ऋषि-जीवन के प्रत्येक पाठक को पं० लेखराम की महानता को अनुभव करना चाहिए। लेखराम को समझने के लिए उपरोक्त पत्र की यह पंक्ति बड़ी महत्वपूर्ण है।

पं० लेखराम एक मुसलमान की दृष्टि में

दिवंगत श्री पं० शान्ति स्वरूप जी (पूर्व मौलवी मुहमद अली कुरैशी) को जिला सूरत गुजरात में एक मुसलमान यात्री मिला। उस मुसलमान भाई की कभी पं० लेखराम जी से भेंट हुई थी। उसने पं० शान्ति प्रकाश जी को बताया कि "पं० जी के अरबी, फारसी व संस्कृत के ज्ञान में भले ही कुछ कमी है परन्तु उनकी आचरण की शक्ति (कुवते अमली) बढ़ी हुई है, वह ईश्वर के प्रेम के रंग में रंगे हुए हैं। वह तलवार का भय नहीं जानते, वह ईश्वर के सिवा किसी से भी नहीं डरता। वह ईश्वर के नाम पर न्यौछावर है। मैंने उनसे अत्यन्त विनीत भाव से खुदा के नाम पर कुछ रुपये मांगे। पं० जी ने फूट-फूट कर रोते हुए कहा कि तू ईश्वर के नाम पर जान भी मांगता तो सेवक जान भी भेंट करता। यह आने-जाने वाला धन ईश्वर के प्रेम के सामने तुच्छ है और जितने रुपये मैंने मांगे, दे दिये। वह चाहे हिन्दू है परन्तु ईश्वर के प्रेम में इतना डूबा हुआ है कि जान व माल न्यौछावर करने को उद्यत है।"

इस उद्धरण से ऐसा लगता है कि मुसलमान यात्री ने पं० लेखराम जी के जीवन काल में पं० शान्ति स्वरूप जी को ये शब्द कहे। मुसलमान यात्री का एक-एक शब्द पठनीय है। पं० जी को संस्कृत का तो स्वल्प ज्ञान था परन्तु फारसी, अरबी के तो वे प्रकाण्ड पण्डित थे। यह बात समझ लेनी चाहिए!

रोपड़ में हलचल मच गई

रोपड़ के पादरी पी० सी० उप्पल ने एक राजपूत युवक को फुसला कर

ईसाई बना लिया। पं० लेखराम जी को जब सूचना मिली तो वह रोपड़ पहुंचे। उनके वहां पहुंचने से पूर्व ही रोपड़ के प्राणवीर दीन बंधु सोमनाथ जी के उद्यम से वह युवक शुद्ध कर लिया गया। उस युवक को सोमनाथ जी ने अपने गृह पर रखा। वे ऐसे ही दिन थे। पोंगा पंथी आर्यों के घोर विरोधी थे। शुद्धि का शब्द भी सनातनी सुनने को तैयार न थे। खाना सोमनाथ के घर वह युवक खाता था और ईसाईयों से अधिक पौराणिक सटपटाते थे।

पं० जी ने रोपड़ पहुंचकर मण्डी में लगातार कई दिन तक बाईबल पर व्याख्यान दिये। पादरी पी० सी० उप्पल को लिखित व मौखिक शास्त्रार्थ के लिए निमन्त्रण दिया। उप्पल महोदय ने चुप्पी साध ली। यह घटना अप्रैल १८९५ ई० की है।[1]

जब पं० जी गाड़ी से कूद पड़े

इस घटना से सम्बन्धित एक और प्रेरणाप्रद घटना है। पं० जी लाहौर से डाक गाड़ी में बैठे। दोराहे का टिकट लिया। जब दोराहे का स्टेशन निकट आया तो पं० जी ने अपना सामान बांधना आरम्भ किया। साथ के यात्रियों ने कहा कि दोराहा तो गाड़ी रुकती ही नहीं। गाड़ी रुके न रुके, पं० जी का कार्यक्रम निश्चित ही था। कितनी भी सावधानता बरती जावे, गाड़ी से कूदने पर चोट तो लगेगी ही। एक हाथ पर चोटें लगी। अपना धर्म रक्षा का काम वहां करके अगले दिन सायं को पं० जी रोपड़ पहुंचे। पं० जी नौका से उतरे तो आर्यों ने हाथ पर पट्टी का कारण पूछा। पं० जी ने सब वृत्तांत सुनाया। आर्यजन उन्हें वीर सोमनाथ जी के घर पर ले गए। कुछ विश्राम कर चुके तो फिर आर्य लोग उन्हें ला० लछमन दास जी सहायक सर्जन के पास ले गये। उनकी चिकित्सा से पं० जी कुछ दिन में ठीक हो गये।

हम इस घटना को अपनी पुस्तक 'रक्त साक्षी पं० लेखराम' में किसी उपयुक्त स्थान पर देना चाहते थे परन्तु भूल गये। इस घटना की प्रामाणिकता में हमें कभी भी सन्देह नहीं हुआ। पं० जी सरीखे साहसी व बलिदानी व्यक्ति के लिए ऐसा करना साधारण सी बात है तथापि इतिहास प्रेमी गवेषक इसका

---

[1] द्रष्टव्य 'आर्य मुसाफिर' मासिक, मार्च १९१४ ई०, पृ० ४७९-४७०

प्रमाण जानना चाहें तो हमारा निवेदन है कि रेवाड़ी के महाशय राम लक्ष्मण गुप्त को कई बार पं० जी का सत्संग प्राप्त हुआ। वह देहली भी रहे। इस घटना के समय वह रोपड़ थे। उनका पं० जी विषयक लेख हमारे पास प्रमाण स्वरूप सुरक्षित है।[1]

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज ने लिखा है कि पण्डित जी ने पायल (पटियाला रियासत) में गाड़ी से छलांग लगाई थी। चावा पायस अब लुधियाना जिला में है।[2] स्वामी जी के लेख से घटना की सत्यता की तो पुष्टि ही होती है। स्वामी जी ने स्थान का नाम दोहराहा की बजाय चावा पायस लिखा है। हमारा मत यह है कि इस विषय में महाशय राम, लक्ष्मण जी का लेख ही प्रामणिक मानना चाहिए।

मौलवी साहिब कुछ कह न सके

मई १८९६ ई० में पं० जी आर्यसमाज रोपड़ के उत्सव पर पधारे। पं० जी उत्सव के दो दिन बाद भी रोपड़ में ठहरे। महाशय राम, लक्ष्मण जी तथा उ० प्र० के एक अर्ध बन्धु (जो उत्सव में सम्मिलत होने के लिए आए थे) पं० जी के साथ नौका में सवार होकर रोपड़ से विदा हुए। नौका चल पड़ी। यात्री परस्पर बातें करने लगे। नौका में एक मौलवी भोले-भाले हिन्दू स्त्री-पुरुषों को बहकाने लगा। गण्डे-तावीजों की महत्ता के बारे में भ्रामक प्रचार कर रहा था। पं० जी, श्री रामलक्ष्मण और तीसरा आर्य बंधु धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। मौलवी जी बड़े ऊचे स्वर से बोल रहे थे। पं० जी ने उसे सुना और झट से पूछ लिया कि मौलवी जी आप क्या कह रहे हैं? इससे पूर्व मौलवी महोदय कुछ कहते, नौका में बैठे हुए एक अन्य व्यक्ति ने मौलवी जी के कान में कहा, यह पं० लेखराम हैं।" पं० जी का नाम सुनते ही मौलवी जी ने ऐसी चुप्पी साधी कि मानो मुख में जिह्वा है ही नहीं। बहुत कहने-सुनने पर लड़खड़ाती वाणी से कुछ कहना चाहा परन्तु कुछ बात न बनी। पं० जी तो चाहते थे कि यहो सत्य-असत्य का निर्णय करने के लिए शास्त्रार्थ हो जावे।[3]

---

१. द्रव्यव्य 'आर्य मुसाफिर' मार्च १९१४ ई० पृ० ४८०

२. द्रष्टव्य आर्यसमाज के महाघन पृ० ९०

३. द्रष्टव्य आर्य मुसाफिर, मार्च १९१४, पृ० ४८१

जहां अजीत व जुझार ने वीरगति पाई

इस यात्रा में पं० जी ने चमकोर के पास पहुंचकर गुरु गोविन्द के दो वीर पुत्रों के बलिदान की स्थली देखने की चाह व्यक्त की। चलती नौका से नहर की पटरी पर कूद पड़े। रामलक्ष्मण सामान के पास बैठे रहे। थोड़ी देर के बाद पं० जी इनसे आ मिले।

आपको सदा काम रहते हैं

श्री सत्यधारी जी सोहावा के रेलवे स्टेशन पर गाड़ी से कहीं जा रहे थे। पं० लेखराम जी उन्हें वहां मिले और अपने साथ पेशावर के आर्यसमाज के उत्सव पर चलने की प्रेरणा दी। सत्यधारी जी ने कहा कि अभी तो मैं एक आवश्यक कार्य के लिए गुजरात जा रहा हूं। पं० जी ने कहा कि मैंने आप की बहुत प्रशंसा सुनी है। आपको कभी नहीं सुना। मैं देखना चाहता हूं कि आप श्रोताओं के हृदयों को कैसे हिला देते हैं? इतने में गाड़ी ने सीटी दे दी और सत्यधारी जी चले गए।

अपने बलिदान से पूर्व पं० जी इन्हीं श्री सत्यधारी जी से लाहौर में शाह आलमी द्वार की ओर जाते मिल गये और अपने साथ मुलतान के उत्सव पर चलने को कहा। सत्यधारी जी ने पुनः अपनी व्यस्तताएं बताकर मुलतान जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। पं०जी ने कहा—वहां एक सप्ताह के लिए प्रचार की बड़ी धूम रहेगी आप चलिए। फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। सत्यधारी जी ने पुनः वही उत्तर दिया कि अभी मुझे कई काम हैं। पं० जी ने अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए कहा 'आपको सदा काम ही रहते हैं।' पं० जी चलते गए और मुड़-मुड़ कर कहते गये "फिर ऐसा अवसर नहीं आएगा।" "फिर ऐसा उत्सव नहीं आएगा।"

हुआ भी ऐसा ही। पं० जी मुलतान से लौटे और क्रूर घातक की छुरी से वीर गति पा गये। फिर वह अवसर न आया कि सत्यधारी जी उनके साथ कहीं जा पाते।

जब सिख वीरों ने पं० जी को कंधों पर उठा लिया

मिर्जा गुलाम अहमद ने 'सत वचन' नाम से एक तुस्तक छापी। उसमें यह

सिद्ध करने का यत्न किया कि बाबा नानक देव जी पक्के मुसलमान थे। इस पुस्तक के छपने पर सिखों में बड़ी हलचल मची। तब प्रतिष्ठित सिखों ने पं० जी से विनती की कि वह इसका उत्तर दें। उस समय उन्हें पं० जी से सिवा कोई दूसरा व्यक्ति इसका उत्तर देने वाला नहीं सूझता था। सिखों की विनती पर पं० जी ने बड़ी गवेषणा करके सामग्री तैयार की। बलिदान से पूर्व इस विषय पर एक ओजस्वी व खोजपूर्ण व्याख्यान देकर मिर्जा साहेब की पुस्तक का युक्ति व प्रमाणों से प्रतिवाद किया। व्याख्यान का विषय था "बावा नानक देव की निस्बत हमारे ख्यालात"। भारी संख्या में सिख उन्हें सुनने आए। सेना के सिख जवान भी बहुत संख्या में वहां उपस्थित थे। पं० जी के व्याख्यान के पश्चात् सेना के वीर सिख जवानों ने पं० जी को ऐसे उठा लिया जैसे पहलवान को विजयी होने पर उसके शिष्य उठा लेते हैं।[1]

अपनी विद्वत्ता, ओजस्वी वाणी, धर्मभाव व साहस से जन-जन के हृदय को जीतने वाले रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी सरीखे तेजस्वी व्यक्तित्व पर हम क्या लिखें और क्या न लिखें।

वह इतिहास बना गया

लेखराम बलिदानी योद्धा, जीवन भेंट चढ़ा गया।
तन-मन-धन सर्वस्व लुटाकर, ऊंचे कर्म कमा गया।
देश, धर्म का दीवाना, वह नरनामी नर नायक था।
दीन दुखी का सेवक था, दलितों का वीर सहायक था।
पर हित जीवन भेंट चढ़ाकर, वीर गति को पा गया·····

मरने का डर वह क्या जाने, वह ईश्वर विश्वासी था।
राम कृष्ण का वंशज प्यारा, सच्चा भारतवासी था॥
जन्म मरण के भेद मुसाफिर सारे हमें बता गया·····
छुरियों और कटारों से, वह अंगारों से खेला था।
वीर शहीद निराला मानस, बलिदानी अलबेला था।

---

१. द्रष्टव्य 'सत धर्म प्रचारक' साप्ताहिक उर्दू जुलाई ६ सन् १९००, पृ० १०।

ढोंग ढांग के तर्क तोप से, सारे किले गिरा गया……
जाति हित में 'लेखराम' ने, क्या कुछ नहीं लुटाया है।
रच कर ग्रन्थ अनूठे उसने, वैदिक नाद बजाया है॥
जीवन लिखते अमर ऋषि का, आप अमर पद पा गया……

'जिज्ञासु' वह नामी ज्ञानी, परम तपस्वी वेदाभिमानी।
हर संकट में नर नाहर ने, डटकर अपनी छाती तानी॥
गर्व करें हम जिस पर ऐसा, वह इतिहास बना गया।
लेखराम बलिदानी योद्धा जीवन भेंट चढ़ा गया॥

रचयिता—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

छत्रपति शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक

अतीत में विलीन भारत का इतिहास अति प्राचीन है। सहस्रों नहीं, लाखों व करोड़ों वर्षों का है। पचास वर्ष पूर्व सैमटिक मतों के कुप्रभाव से पश्चिमी देशों की यह मान्यता रही कि सृष्टि को बने पांच-छः सहस्र वर्ष हुए हैं। आज यह निराधार धारणा कपोलकल्पित सिद्ध हो चुकी है। महर्षि दयानन्द का बोल बाला हो चुका है कि **सृष्टि को बने नहीं, अपितु, बिगड़े हुए पांच सहस्र वर्ष हुए हैं।** महाभारत काल से संसार का नैतिक, सामाजिक व धार्मिक ह्रास आरम्भ हुआ।

श्री H.G. Wells आदि विश्व विख्यात विद्वान, इतिहासकार व यशस्वी लेखक अब प्राचीन भारतीय ऋषियों की मान्यता को स्वीकार कर चुके हैं कि सृष्टि की आयु दो अरब वर्ष है। विजेता, साम्राज्यवादी, पराजित राष्ट्रों की उपलब्धियों को घटा (Belittle) करके दिखाते रहे हैं और अपनी छोटी-छोटी सफलताओं को भी बढ़ा-चढ़ा कर (Exagerate) बताते आए हैं। भारत में भी विजेता लुटेरों ने हमारे राष्ट्रवासियों में आत्म हीनता का अभद्र भाव भरने के लिए हमारे वैज्ञानिकों, लेखकों, शूरवीरों की उपलब्धियों को जानबूझ कर छिपाने का व घटा कर दिखाने का प्रयास किसा।

हमारे इतिहास के बारे में कई भयंकर भूलें व भ्रांतियां प्रसारित कर दी गईं। राष्ट्रीय स्तर पर इन का प्रतिवाद करने के लिए आंदोलन होना चाहिए।

पोरस की सिकन्दर यूनानी से पराजय की कहानी आज गपोड़ा सिद्ध हो चुकी है। हिन्दुओं का इतिहास पराजय का इतिहास है। इस विषैले मत ने हमारी कितनी पीढ़ियों में ग्लानि की दूषित भावना भर दी। इसी विषैले प्रचार की एक कड़ी यह है कि मुसलमानों ने भारत पर एक सहस्र वर्ष राज्य किया। प्रत्येक देशभक्त भारतीय को, भले ही वह आज मुस्लिम या ईसाई मत का अनुयायी बन जाता है, इस असत्य मत का भण्डा फोड़ करना चाहिए, यह मत एक काला झूठ है।

७१२ ई० में अरबों ने सिंध विजय किया। वे सफल हो कर भी असफल हुए। मुहम्मद गौरी ने अपना प्रथम आक्रमण ११७५-७६ ई० में किया। ११९१-९२ ई० में उसने पृथ्वीराज को पराजित किया। वही भारत का प्रथम मुस्लिम शासक बना। १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हुई। इस प्रकार पांच सौ सोलह वर्ष बनते हैं। इस बीच एक भी दिन ऐसा नहीं बीता जब भारत के किसी न किसी भाग में विदेशी शासकों के विरुद्ध स्वराज्य संग्राम मन्द या बंद हुआ हो। इस काल में कभी भी सारे भारत पर विदेशी शासन न हो सका। इसी काल में विजय नगर जैसा तेजस्वी, सबल, सशक्त राज्य स्थापित हो गया। अतः यह नितांत झूठ है कि भारत पर विदेशी, पठानों, अफगानों, मुगलों ने एक सहस्र वर्ष राज्य किया।

१५६५ ई० में दक्षिण में विजयनगर राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इससे हिन्दू जाति को धक्का लगना स्वाभाविक था। परन्तु आधी शताब्दी में ही दक्षिण में हिन्दुओं में एक चेतना की चिंगारी पैदा हुई। अपने देश, धर्म की रक्षा के लिए जागृति पैदा हुई। राष्ट्रीयता की भावना उभरी। ऐसे स्वस्थ वातावरण में महाराज छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ। स्वर्गीय भाई परमानंद जी ने लिखा है कि ऐसे समय यदि शिवा का जन्म न होता कोई और उनके स्थान पर जन्म ले लेता। युग की पुकार बनकर शिवा मैदान में उतरे। औरंगजेब से बड़ा मुस्लिम सम्राट कोई हुआ नहीं। उससे अधिक विशाल राज्य किसी और विदेशी शासक का नहीं हुआ। ऐसे शक्तिशाली, कूटनीतिज्ञ, अनुभवी और पराक्रमी शासक का मान-मर्दन करके रख देने वाला शिवाजी निश्चय ही एक असाधारण व्यक्ति था।

राष्ट्रीय स्वाभिमान को जागृत करने वाले, नई गर्वीली परम्परायें जोड़ने वाले और राष्ट्र का गौरव भाल ऊंचा करने वाले शिवाजी हमारे देश के एक अद्वितीय सपूत थे। महान इतिहासकार स्वर्गीय डा० बालकृष्ण जी ने पुर्तगाल में जाकर शिवाजी के काल के पुर्तगालियों के भारत से लिखे गये पत्र पढ़े। पुर्तगाली लोग जिन्होंने शिवाजी का युग देखा, जिन्होंने उनका कर्तृव्य व व्यक्तित्व देखा—उन पुर्तगालियों ने अपने देशवासियों के नाम अपने पत्रों में उस समय लिखा कि शिवाजी, सिकन्दर महान और जुलियस सीजर के तुल्य अतुल्य

साहसी व पराक्रमी विजेता हैं। यदि वह किसी और देश में जन्म लेते तो उस देश के निवासी उनकी कीर्ति को और भी चार चांद लगा देते।

शिवाजी के राज्यारोहण की त्रिशती इसी वर्ष है। यह शुभ अवसर सारी जाति और सम्पूर्ण देश के लिए बड़ा पावन पर्व है। यह पर्व बड़े गर्व से मनाया जाना चाहिए परन्तु दुर्भाग्य से सारे देश में अशांति, असन्तोष व रोष का वातावरण है। शासन-व्यवस्था तो पंगु बन चुकी है। शिवाजी के जीवन व राज्यारोहण के विषय में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान हम सब के लिए बड़ा प्रेरणाप्रद होगा।

शिवाजी ने रणक्षेत्र में उतरते ही अपनी सूझ-बूझ, वीरता, सच्चरित्रता एवं दक्षता से ऐसी धाक जमाई कि अरिदल डींग भले ही मारता था परन्तु शिवा के सामने आने से सब के दिल दहलते थे। १६५६ ई० में जब अफजल खां बीजापुर से शिवाजी पर आक्रमण करने निकला तो उसके पास साधनों व सेना की कमी न थी, फिर भी उसका कलेजा हांफता-कांपता था। अफजलपुर में (बीजापुर नगर के पास) आज भी ६३ कब्रें पंक्तियों में बनी दीखती हैं। कहते हैं कि जाने से पूर्व अफजल खां ने अपनी ६३ बेगमों का वध किया और उनको दबा दिया। उसको अपने जीवित लौटने की आशा ही न थी और वह नहीं चाहता था कि उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी बेगमें किसी और की बीबियां बनें।

एक फ्रेंच यात्री Abbe Carre १६७३ ई० में बीजापुर आया। उसने लिखा है कि अफजल खां ने २०० बेगमों का वध किया, तब घर से निकला।

जब १६६६ ई० में आगरा के बन्दीगृह से शिवाजी भाग गए तो औरंगजेब के सरदार फौलाद खां ने सम्राट को जब यह भयानक सूचना दी तो उसने कहा कि "राजा अपने कमरे में था। नियम पूर्वक उसे देखते थे। परन्तु वह एकदम हमारी दृष्टि से ओझल हो गया है, पता नहीं, आकाश में उड़ गया है या भूमि में लुप्त हो गया है। उसने क्या जादू का कमाल किया है, इसका कुछ भी पता नहीं चला।"

शिवाजी के आगरा से चले जाने के चौदह घण्टे बाद मुगल सरकार

ने उनकी खोज के लिए अपने घुड़सवार दौड़ाए परन्तु पक्षी अब हाथ आने वाला न था। इतिहास के प्रवाह को बदलने वाले उस युग पुरुष पर कौन प्रबुद्ध नागरिक गौरव नहीं करेगा ?

देश और जाति का भाग्य बदलने वाले, इतिहास को बदलने व बनाने वाले शिवा के साथ आज ही हम अन्याय नहीं कर रहे अपितु उस युग के लोगों ने भी घोर अन्याय किया। उन्होंने अन्याय किया जो सर्वाधिक उनके ऋणी थे।

शिवाजी अपने तपोबल से राजा बन गए। बीजापुर के राजवंश ने उनको राजा मान लिया परन्तु बीजापुर का राजवंश ही न रहा। अपने शौर्य शक्ति में मुगल सम्राट से भी उन्होंने अपना राजा होना मनवा लिया परन्तु मुगलों से उनका संघर्ष पुनः छिड़ गया। अतः शिवा व उनके मन्त्रियों ने अनुभव किया कि शिवाजी का प्राचीन हिन्दू रीति से राज्याभिषेक हो।

शिवाजी के मार्ग में एक विचित्र बाधा आ उपस्थित हुई। हिन्दू समाज तब पौराणिक जाति बन्धन में जकड़ा हुआ था। हिन्दू रीति से राज्याभिषेक केवल क्षत्रिय का ही हो सकता है। उस समय के ब्राह्मण लोग शिवाजी सरीखे शूर, अजयी विजयी को क्षत्रिय नहीं मानते थे। अतः राज्याभिषेक कैसे हो ? शिवाजी का वंश शूद्र कुल समझा जाता था। अभी कल तक उनके दादा किसान थे। शिवाजी के राज्याभिषेक में सब ब्राह्मण आ सकते थे, यदि कोई अधिकारी प्रकांड विद्वान् उनको क्षत्रिय घोषित करे। काशी के गागाभाट चार वेदों व छः शास्त्रों के मर्मज्ञ समझे जाते थे। उनसे कहा गया कि शिवाजी उदयपुर के महाराणा के कुल से हैं, सूर्यवंशी हैं। गागाभट्ट को महाराष्ट्र आमन्त्रित किया गया। बड़ी दक्षिणा वहीं भेंट की गई। वह महाराष्ट्र आए। स्वर्गीय भाई परमानन्द जी लिखते हैं कि गागाभट्ट तब महाराष्ट्र में गोदावरी की यात्रा पर ही थे। शिवाजी व उनके अधिकारियों ने गागाभट्ट का अपूर्व स्वागत किया। शास्त्र विधि देखी गई। उदयपुर आदि के राज परिवारों की भी राज्याभिषेक विधि देखी व पूछी गई। देश भर के विद्वान ब्राह्मणों को निमन्त्रण पत्र भेजे गए। ११००० ब्राह्मण सपरिवार रायगढ़ आए। सब मिलकर ५०००० व्यक्ति वे बनते थे। चार मास वहां शिवाजी के आतिथ्य का लाभ प्राप्त किया।

स्वामी रामदास जी व माता जीजाबाई का अभिवादन कर आशीष लेकर शिवाजी प्रतिदिन के धार्मिक कृत्यों में व्यस्त रहे। देवी-देवताओं, मन्दिरों, तीर्थों की पूजा होती रही। भारी-भारी भेंट शिवा चढ़ाते रहे।

राज्याभिषेक में एक और बाधा अभी हटानी शेष थी। शिवाजी की शुद्धि कैसे हो ? उनका यज्ञोपवीत अब तक न हुआ था। उनको पापी समझा गया। उन्हें प्रायश्चित कराया गया। यज्ञोपवीत मिल गया। पुनः क्षत्रिय रीति से शिवाजी का अपनी दोनों जीवित रानियों से विवाह किया गया।

अब शिवाजी ने मांग की कि क्षत्रिय पद्धति से उनका राज्याभिषेक वेद मन्त्रों के साथ हो। इस पर वहां ब्राह्मणों में विद्रोह हो गया। वे कहते थे कि ब्राह्मण ही इस युग में शुद्ध हैं, शेष सब अपवित्र हैं। हा ! जाति तेरा दुर्भाग्य। गागाभट्ट घबरा गया। झुक गया। वेद रक्षक, वेद भक्त शिवाजी वेद मन्त्र न सुन सके। तब महर्षि दयानन्द होते तो युग का दृश्य कुछ और ही होता।

गागाभट्ट ने वेद मन्त्र न सुनाए। कुछ और श्लोक आदि बोल कर टाल दिया। गागाभट्ट को ७००० स्वर्ण मोहरें मिलीं। अन्य ब्राह्मणों को भी १७००० मोहरें दी गईं। शिवाजी को इस दुर्व्यवहार पर रोष भी आया। उन्होंने एक बार तो कह दिया कि ब्राह्मण सभी राजकाज के कामों से पृथक् हों क्योंकि वे 'पवित्र' हैं। वे ये अपवित्र कार्य न करें।

अगले दिन जाने-अनजाने में किए गये सब प्रकार के पापों के लिए शिवाजी ने सात धातुओं से तुला दान किया। ब्राह्मणों का लोभ फिर भी शिवाजी का पीछा कर रहा था। दो ब्राह्मणों ने आपत्ति की कि शिवाजी ने युद्ध में मनुष्य, पशु, बच्चे आदि प्राणी मारे। अतः उस पाप के लिए कोण्कन आदि के ब्राह्मणों को आठ सहस्र रुपये और दिये जाएं। शिवाजी ने यह राशि भी दे दी। राज्याभिषेक अब भी न हुआ। इतना धन व्यय किया गया और एक तांत्रिक बाबा निश्चल पुरी ने घोषणा कर दी कि गागाभट्ट ने सब विधि अशुभ समय में करवाई हैं।

राज्याभिषेक

५ जून १६७४ को विधि आरम्भ हुई। गंगा आदि पवित्र नदियों के जल

से शिवाजी ने स्नान किया। गागाभट्ट को ५००० स्वर्ण मोहरें पुनः भेंट की गईं। ६ जून को राज्याभिषेक हुआ। सब विधियां की गईं। बड़ा मूल्यवान सिंहासन बनवाया गया था। गागाभट्ट की देख-रेख में शिवाजी का राज्यारोहण हुआ। ब्राह्मणों ने आशीष दिया। छत्रपति ने उन सबको व एकत्रित भिखारियों को सब प्रकार के उपहार दिए। १६ प्रकार का महादान जो शास्त्रों में आता है, वे भी छत्रपति ने किया।

फिर साधारण ब्राह्मण व अन्य लोग जो आए थे, उनको दान देना आरम्भ हुआ। भोजन भी करवाया गया। १२ दिन तक यह क्रम चला। प्रत्येक ब्राह्मण को ३ से ५ रुपये तक तथा बच्चों व स्त्रियों को एक से दो-दो रुपये तक दिए।

राज्याभिषेक के १२ दिन बाद माता जीजाबाई का देहांत हो गया। वह बहुत वृद्धा थी। अपने पुत्र रत्न का पूरा मान-सम्मान देखकर संसार से गईं।

एक बार फिर राज्याभिषेक

निश्चल पुरी गोस्वामी ने अभिमान पूर्वक कहा कि गागाभट्ट ने वेदोक्त रीति से विधि करवाई। तांत्रिक, देवों, भूतों की उसने उपेक्षा की। समय भी अशुभ रखा। गागाभट्ट पागल था। रानी काशीबाई, माता जीजाबाई, सेनानी प्रताप राय कुछ ही दिन में मर गए और भी कई अशुभ घटनायें घटीं। गागा भट्ट की नाक पर भी तो तभी कोई लकड़ी लगी थी। गागा ७००० स्वर्ण मोहरें ले गया। यह थी बड़ी जलन निश्चल पुरी को। निश्चल गोस्वामी का भाव था कि वैदिक देव अपने उपासक को इतना बचा नहीं सकते जितना कि तांत्रिक दानव हानि पहुंचा सकते हैं।

२४ सितम्बर १६७४ को पुनः तांत्रिक विधि से राज्याभिषेक किया गया। शिवाजी ने भी सोचा, लोभी भी तृप्त हो जाएगा और अंधविश्वासी समाज भी किसी घातक भ्रम का शिकार न हो जाए। अतः फिर राज्याभिषेक तांत्रिक विधि से करवाना मान गये। पुनः धन लुटाया गया।

स्मरण रहे कि निश्चल पुरी ने लिखा है कि प्रतापगढ़ के मन्दिर में आग अशुभ मुहूर्त्त के कारण लगी थी। कई हाथी, घोड़े मर गये परन्तु निश्चल पुरी के राज्याभिषेक के ठीक एक वर्ष बाद २५-९-१६७५ ई० को मन्दिर पर बिजली

गिरी। इस पर विख्यात इतिहासकार श्री यदुनाथ ने बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा है—

"If this information is correct, then the Tantrik rites were clearly as futile for averting evil as the Vedic Puja, for all the money that Nischal Puri had wheedled out of Shivaji & all his boasting."[1]

कितना धन व्यय किया गया, इस पर इतिहासकारों में मतैक्य नहीं। यदि मराठा साक्षी मानी जाए तो एक करोड़ बयालीस लाख रुपये व्यय किये गए। परन्तु कुछ आधुनिक इतिहास लेखकों का मत है कि 50 लाख रुपये व्यय किये गए। श्री यदुनाथ का भी यही मत है।

देश रक्षा, धर्म रक्षा व जाति रक्षा में सर्वस्व न्यौछावर करने वाले शिवाजी के यज्ञोपवीत व राज्याभिषेक के इस विवरण को पढ़कर क्या हम धर्म रक्षा; देश रक्षा, जाति रक्षा का संकल्प करेंगे ? क्या जाति बन्धन तोड़ेंगे ? क्या वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने का अधिकार सबको देंगे ? क्या वेद प्रचार में शक्ति लगायेंगे ?

वेद मन्त्र सुनने की शिवाजी की तीव्र इच्छा इन सब प्रश्नों का उत्तर आज भी खोजती है। इसी इच्छा के लिए उन्होंने अपनी विवाहिता पत्नी से पुनः वेदोक्त रीति से विवाह करवाया। भाई परमानन्द जी लिखते हैं कि गागा ने यज्ञोपवीत के समय शिवाजी के कान में गायत्री मन्त्र पढ़ा था।[2]

प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों को एक और भय भी सता रहा था। शिवाजी के राज्याभिषेक के समय उनकी माता व रानियां भी उपस्थित थीं। स्त्रियों को भी तो पौराणिक वेद श्रवण का अधिकार नहीं देते। करें भी तो क्या ? वेदोक्त राजधर्म में गृहस्थी ही राज व्यवहार का अधिकारी है। ब्रह्मचारी, यति, वनस्थ, संन्यासी के लिए राज व्यवहार की "प्रवृत्ति होनी योग्य नहीं।" ये आर्ष नीति

---

1. Shivaji And His Times By Sir J. N. Sarkar, Page 214. Orient Longman's Ist impression 1973.
२. 'तारीखे महाराष्ट्र' लेखक श्री भाई परमानन्द जी, पृ० 215.

है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी अपने ऋग्वेद भाष्म १.१००.११ में यही लिखा है। अतः बिना रानी के वह राज्यारोहण कैसे करते ? प्रभु करे कि हम कुछ सीखें, सुधरें ताकि देशोन्नति हो।

कुछ झाकियां एवं विचारणीय बातें

जीवन भर शिवाजी महाराज मौत से आंख-मिचौनी खेलते रहे। मृत्यु ने प्रत्येक बार मुंह की खाई। शिवाजी ने हर बार जिस समय-सूचकता व सूझ-बूझ का परिचय दिया है, उसे पढ़कर मानव बुद्धि दंग होती है।

१६६४ ई० में शिवाजी ने सूरत पर धावा बोला तो कायर मुगल सूबेदार अनायत खां एक दुर्ग में जा छिपा। शिवाजी को मारने के लिए उसने एक षड्यन्त्र रचा। अपना एक दूत शिवाजी के पास भेजा। उसने शिवाजी पर प्रहार किसा परन्तु घातक स्वयं ही मृत्यु का ग्रास बना।

शाइस्ता खां जब शिवाजी पर विजय पाने निकला तो बढ़ता हुआ पूना जा पहुंचा। वहां उसकी जो दुर्गति हुई वह इतिहास प्रेमियों को विदित है। शिवाजी महाराज ने अपने विश्वस्त सेनानी चिमनाजी बापू जी के साथ शाइस्ता खां के कमरे में घुसने की पहल की।

"It was evidently at this time that the lamps in the room were put out by some wise woman."[1]

इसी समय किसी समझदार स्त्री ने बत्ती बुझा दी।

मराठों के छः सैनिकों ने वीर गति पाई और चालीस घायल हुए। शाइस्ता खां का एक पुत्र, एक कप्तान, चालीस और रक्षक, छः बेगमें मारी गईं। शाइस्ता खां, उसके दो पुत्र व आठ अन्य स्त्रियां घायल हुईं। कैसे थे वे रण बांकुरे ? जो निश्चय किया सो कर दिखाया। उनके संकल्प जल पर बनी रेखा के समान न थे।

आगरा से जिस दिन शिवाजी भागे उस दिन उनके स्थान पर उनके एक विश्वस्त व्यक्ति हीरा जी खो गये। क्या देश हीरा जी को कभी भुला सकेगा ?

---

1. Shivaji and His Times By J. N. Sarkar, Page 89.

हीरा जी ने चादर से एक हाथ बाहर निकाल रखा था। कलाई पर शिवाजी का एक स्वर्ण का आभूषण पहन लिया। द्वारपाल यही समझते रहे कि शिवा सोया है। आरे से शीशा काटने वाले भाई मतिदास व छुरा पेट में खाने वाले पं० लेखराम सरीखे अतुल्य वीरों के वंशज बलिदानी भाई परमानंद जी ने लिखा है कि शिवाजी की अंगूठी हीरा जी ने पहनी थी। शिवाजी के भागने के घण्टों बाद हीरा जी भी निकल गये और जाते-जाते पहरेदारों को कहते गये कि शोर मत करो, शिवाजी अस्वस्थ हैं। हीरा जी समर्पण भाव, देश भक्ति, साहस शिवाजी के शौर्य सेवा से क्या कम है ?

शुद्धि-चक्र

शिवाजी ने बलात् विधर्मी बनाए गये, अनेक भाइयों को वापस अपने धर्म में ले लिया। उन्होंने तटीय क्षेत्र पर पुर्तगाली बस्तियों के गवर्नर को कहा कि बलपूर्वक ईसाई बनाए गये हिन्दू उन्हें लौटाए जाएं तो पुर्तगाली गवर्नर ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उसने कहा कि पुनः काफिर (Pagan) बनने के लिए हम किसी को नहीं लौटा सकते।

जो हो गया, सो हो गया। निराश होने की कोई बात नहीं। शिवाजी के राज्यारोहण की त्रिशती पर हम संकल्प करें कि देश और जाति के सब रोग दूर करेंगे। श्रीयुत यदुनाथ ने जिन शब्दों के साथ अपने विख्यात ग्रन्थ को समाप्त किया है, हम भी उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर अपनी लेखनी को विराम देते हैं :—

[1]"Shivaji has shown that the tree of Hinduism is not really dead, that it can rise from beneath the seemingly crushing load of centuries of political bondage, exclusion from the administration, and legal repression, it can put forth new leaves and branches, it can again lift its head up to the skies."[1]

---

1. Shivaji And His Times, Page 390

खेद है कि देशवासी आज तक भी शिवाजी की अग्नि को अपने अन्दर समाविष्ट नहीं कर पाए। शिवाजी के पश्चात् महाराष्ट्र ने राष्ट्र को जो सब से बड़ा सपूत दिया, वह बाजीराव प्रथम था। बाजीराव ने मस्तानी नाम की एक मुसलमान देवी से विवाह कर लिया। मस्तानी पतिव्रता नारी थी। उसकी कोख से जन्मे अपने शूर पुत्र शमशेर बहादुर को बाजी राव अपने ब्राह्मण समाज में स्थान न दिला सके। ३१ वर्ष की आयु में पानीपत के तीसरे युद्ध में वह वीरगति पा गया। उसका पुत्र अली बहादुर बांदा को विजय करके वहां का नवाब बन गया। इस सारी कहानी पर किसी भी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

हमारी यही दुर्बलता शत्रु के लिए वरदान सिद्ध होती रही है।

●

दयानन्द और जन-जागरण

महाराष्ट्र इतिहास परिषद् ने जनवरी १९८६ ई० में अपना नवम अधिवेशन आयोजित किया। मुझे भी इस अवसर पर एक (Research Paper) शोध लेख पढ़ने का निमन्त्रण दिया गया। मैंने शोध लेख तो भेज दिया परन्तु हरियाणा बन्द के कारण गाड़ी भटिन्डा से आगे न गई और मैं वापिस अबोहर आ गया।

उस अवसर के लिए लिखा गया मेरा लेख Award के लिए चुना गया। बाहर के लोगों के लिए तो Award की राशि नाम मात्र की थी। मेरे लिए राशि मुख्य नहीं। मुझे सन्तोष है कि मेरे शोध लेख की, जांच समिति ने प्रशंसा की। वही शोध लेख इस पुस्तिका के रूप में पाठकों के हाथों में है। मैं इसी विषय पर एक बड़ी पुस्तक प्रकाशित कर रहा हूं परन्तु साहित्यिक व्यस्तताओं के कारण अभी इस कार्य को पूरा करना कठिन है।

इस शोध लेख के लिए लेखक ने कितना परिश्रम किया, यह पाठकों के सामने हैं। आर्यसमाज रेवाड़ी की प्रथम प्रधान राव युधिष्ठिर सिंह की पत्नी का नाम मैं इसमें नहीं दे सका। इसका मुझे खेद है। आर्य गजट के एक पुराने

अंक में मैंने आर्यसमाज रेवाड़ी के उस चुनाव का समाचार पढ़ा था। वह अंक तो मेरे पुस्तकालय में है परन्तु उसे खोजने के लिए समय चाहिए। उनके प्रपौत्र भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री राव वीरेन्द्र सिंह को पत्र लिख कर नाम पूछा तो उन्होंने पत्र का उत्तर भी न दिया। मैं इस विषय को अपनी बड़ी पुस्तक में नाम अवश्य दे दूंगा। शोध लेख में यहां हमने कहीं-कहीं कुछ पंक्तियां और जोड़ी हैं।

इस शोध लेख में मैंने आर्यों पर बनाए गए प्रथम पटियाला अभियोग (Patiala Sedition Case) का सन् १९०९ दिया है परन्तु श्री धर्मवीर जी भूतपूर्व राज्यपाल पंजाब व बंगाल ने अपने लेखों में सन् १९०८ लिखा है। मेरा निवेदन है कि पटियाला राज्य के ८४ आर्यों को अक्तूबर १९०९ में जेल में डाला गया। १७ फरवरी १९१० ई० को कारागार से छोड़ा गया। मैंने पूरी जांच-पड़ताल करके लिखा है। इस अभियोग के सब अभियुक्तों के नाम नहीं मिले। नरवाना के उन सब आर्य वीरों के नाम यहां भूमिका में देता हूं। इतिहास की सुरक्षा के लिए ऐसा आवश्यक है : सूरजभान जी, दिलीप चन्द जी, गौरी शंकर जी, पृथ्वी चन्द जी, शादीराम जी, हरविलास जी, हरनन्द जी, रामधारी जी पटवारी, रिखीराम जी, भगवान चन्द्र जी, रुघाराम जी, हरिचन्द्र जी, कस्तूरीलाल जी पटवारी व शादीराम जी अहलमद इनमें से नरवाना आर्य-समाज के संस्थापक श्री पंतराम जी तब गुरुकुल कांगड़ी में होने के कारण बंदी न बनाए जा सके परन्तु उनके सुपुत्र श्री दिलीप चन्द जी को बन्दी बनाया गया।

आर्यसमाज नरवाना के उत्साही मन्त्री श्री भाई राम कुमार जी आर्य ने पटियाला अभियोग में नरवाना के अभियुक्त आर्यवीरों के नाम दिए इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूं। विनीत :—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

जगती को आज जरूरत है

जगती को आज जरूरत है उन आर्य वीर जवानों की—
जिन के उर में है आग लगी, जिनके जीवन में मस्ती है।
तन मन जिनका वस डोले न, जिनकी धरती में हस्ती है॥
बिन सोचे जो शुभ कर्म करें, उन वीरों की दीवानों की —

भयभीत न हों जो मृत्यु से, सच्चे ईश्वर विश्वासी हों।
जो संकट में घबराये न, दुःख सुख के जो अभ्यासी हों॥
ऐ वीरो ! आज जरूरत है, बिस्मिल से परवानों की—

जो ऐक्य भाव को लेकर के मानव को खूब झंझोड़ सकें।
अज्ञान अविद्या की गर्दन निर्मम बन तोड़ मरोड़ सकें॥
धरती को आज जरूरत है, ऐसे उद्भट विद्वानों की—

जिनको है गर्व जवानी पर, जो रण में गर्जन कर सकते।
झट चीर कलेजा अड़चन का, वह वीर जो आगे बढ़ सकते॥
धरती को आज जरूरत है, उन गुणवाणों बलवानों की —

बौद्धिक देन

महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज का भारतीय जन-जागरण को योगदान का एक व्यापक विषय है। जन-जागरण के लिए वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है। फ्रांस की क्रांति का एक कारण वहां के दार्शनिकों का दार्शनिक साहित्य था परन्तु उन दार्शनिकों ने स्वयं क्रान्ति के लिए और कुछ नहीं किया। ऋषि दयानन्द ने भारतवासियों को सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए जहां एक तेजस्वी विचारधारा दी, वहां देश के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, गिरि पर्वतों पर जाकर जन-जागरण का शंख फूंका। वह भारत के प्रथम विचारक, सुधारक थे, जिन्होंने देश के उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम में भ्रमण करके नवचेतना का संचार किया।

उनकी शिष्य परम्परा ने भी आगे चलकर धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक व इतर क्षेत्रों में अद्वितीय कार्य करके एक इतिहास बनाया है। उनके शिष्य जन-जागरण के कार्य में सबसे पहले व सबसे आगे रहे। इसका कारण ऋषि का वीरोचित दर्शन है। श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने लिखा है –

"He has given us a bold philosophy of life, a philosophy of the reality of God, reality of man and the reality of the worldin which man has to live in. His is a philosophy bold of actions and not of idle musings."[1]

ऋषि दयानन्द ने अपने वीरोचित दर्शन को अपने जीवन में अनुदित करके देशवासियों के सामने एक उदाहरण रखा है। वह भारत के प्रथम विचारक थे, जिन्होंने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में अंग्रेजी न्यायालय की पक्षपात के कारण घोर निन्दा करते हुए लिखा था—"इसी से ईसाई लोग ईसाईयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो, तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं।"[2]

ऋषि ने इसी त्रयोदश समुल्लास में सिंहगर्जना करते हुए यूरोपीय साम्राज्य-वाद पर तीखा प्रहार करते हुए लिखा था—"वाह ! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर।"[3]

प्रथम विश्व युद्ध तक गांधी जी सरीखे महान नेता भी अंग्रेज जाति के न्याय पर अडिग विश्वास रखते थे। लाल बाल पाल सरीखे राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास अंग्रेजी न्यायपालिका से उठ चुका था। परन्तु ऋषि दयानन्द ने तो कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही अपनी लेखनी व वाणी से ब्रिटिश न्यायालयों के बहिष्कार की भारतीयों को प्रबल प्रेरणा देते हुए ग्राम पंचायतों द्वारा परस्पर के विवाद निपटाने का सन्देश दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में ही कई क्रांतिवीरों ने इसे अपने-अपने क्षेत्र में क्रियान्वित करने का सत्प्रयास किया।

---

1. Swami Dayanand's Contribution To Hiudu Solidarity, Page 162.
२. 'सत्यार्थ प्रकाश' शताब्दी संस्करण, द्वितीय बार, पृ० ८०३।
३. वही पृ० ७७८

ऋषि के जीवन काल में ही उनके राष्ट्रीय सन्देश के चार सूत्री कार्यक्रम को लेकर देश-प्रेमियों ने एक राष्ट्रीय संगठन का विचार बनाया। महाराष्ट्र में ही सर्वप्रथम आर्यसमाज स्थापित हुआ और महाराष्ट्र के पूना नगरी के श्री गणेश वासुदेव जोशी १८७९ ई० में काशी गए। वहां उन्होंने उत्तर भारत की इस प्राचीन नगरी के प्रमुख जनों को निम्न चार बातें कहीं—

(१) सर्वत्र एक सार्वजनिक संगठन का निर्माण किया जावे।

(२) स्थान-स्थान पर पंचायती न्यायालय स्थापित हों।

(३) स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग किया जावे।

(४) शिल्प, कला, कौशल की उन्नति की ओर ध्यान दिया जावे।

इस आंदोलन को ऋषि दयानन्द का समर्थन प्राप्त हुआ। 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' ने तत्काल इसकी पुष्टि की।[1]

इस से पूर्व कि यह आंदोलन व्यापक रूप धारण करता, अनिष्टकारियों की कुटिल कुचाल से ऋषि का बलिदान हो गया और चतुर अंग्रेज ने कांग्रेस की स्थापना करके अपने प्रयोजन की सिद्धि का नया मार्ग निकाला।

ऋषि के जीवन काल में ही एक अन्य आर्य पत्र 'आर्य दर्पण' इन सब बातों का प्रचार करते हुए अंग्रेजी शासन की भारत द्वेषी नीतियों की कड़ी भाषा में जैसी भर्त्सना करता था उसका दूसरा उदाहरण मिलना अति कठिन है, यथा 'आर्य दर्पण' में प्रकाशित एक उर्दू कविता के तीन-चार पद्य यहां प्रमाण स्वरूप देते हैं—

भला यह तो बोलो है क्या बात तुम में,
जो हम से ज्यादा फजीलत तुम्हारी।
यह माना कि हम लोग हैं काले-काले,
यह माना कि गोरी है रंगत तुम्हारी॥
यह माना हैं मुफलिस नहीं हम हैं जाहिल,
मगर किस तरह सब बदौलत तुम्हारी॥

---

१. द्रष्टव्य 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' सितम्बर १८७९ ई० का अंक

गजब है यह उल्टी हमीं को मलामत,
हमारी कमाई है दौलत तुम्हारी ॥
मगर खैर अब वक्त वह आ गया है,
चलेगी न कुछ भी शरारत तुम्हारी ॥[1]

इस पत्रिका के प्राय: सभी अंकों में अंग्रेज जाति के पक्षपाती, भारतीयों के धन का अपहरण करने वाला व भारतीयों पर अन्याय करने वाला सिद्ध किया जाता रहा। 'आर्य दर्पण' में हिन्दुस्तानी क्यों तबाह हुए ?' टिप्पणी इसका प्रमाण है।[2] 'वाशिन्दगाने हिन्द गरीब क्यों हैं ?' 'आजकल किन की ज्यादती है ?' लेख भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।[3]

जब श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी को न्यायालय ने दण्डित करके जेल भेजा तो ब्रिटिश High Court को लताड़ने का सत्साहस करने वाला यही 'आर्य दर्पण' था।[4]

पहले मुगलों, अफगानों, तुर्कों ने और फिर अंग्रेजों ने भारतीयों में हीनता के भाव भरने के सब उपाय किए। साम्राज्यवादी ऐसा ही किया करते हैं। ऋषि दयानन्द के उपरोक्त विचारों व आर्यसमाज के प्रयत्नों से देशवासियों का स्वाभिमान जागा। राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल ने इतिहास का एक सूक्ष्म सत्य प्रकाशित करते हुए अपने अन्तिम भाषण में कहा—

"The greatest contribution of Swami Dayanand was that he saved the country from falling deeper into the morass of helplessness. He actually laid the foundation of India's freedom."

स्वदेशी के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा—ऋषि दयानन्द ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग

---

१. 'आर्य दर्पण' पृ० १०४, मई १८८३ ई०
२. वही पृ० १०८, वही जुलाई १८८३, पृ० १४८ से १५१ तक।
३. 'आर्य दर्पण', मई १८७३, पृ० १०९
४. भारतीय स्वाधीनता संग्राम और आर्यसमाज लेखक प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पर इतना बल दिया कि प्रायः सब आर्यनेता स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व ही स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते थे। १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की ५० वर्षीय जयन्ती पर लण्डन में भारतीय पारसियों व बम्बई प्रान्त की ओर से अब्दुल-लतीफ, पंजाब व सब हिन्दुओं की ओर से लक्ष्मी नारायण ने सम्राज्ञी को (Address) मान पत्र व उपहार भेंट किये। श्री लक्ष्मी नारायण आर्य नेता की यह मौलिकता थी कि उसने भारत से विशेष रूप से भारतीय कला का नमूना एक बाक्स मंगवा कर सम्राज्ञी को भेंट किया।[1]

इसी लक्ष्मी नारायण ने राजा चम्बा के एक सेवक चन्दन सिंह के शव को लण्डन में लावारिस घोषित करके दबाने का विरोध कर उसके शव की शोभा यात्रा निकाल, उसका दाहकर्म करके, शव को जलाने की रीति चलाई। एक अकिञ्चन भारतीय के लिए इतना प्रेम दिखाकर आर्य समाजियों ने इंगलैण्ड को चकित कर दिया। तब वहां के प्रैस में इसकी बड़ी चर्चा चली।[2]

स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व कई प्रमुख आर्यसमाजों में स्वदेशी वस्तुओं के विक्री केन्द्र थे। महात्मा मुंशी राम के घर जालंधर में भी ऐसा प्रचार व विक्री केन्द्र था। सब आर्य पत्रों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर लेख व विज्ञापन होते थे। १९०५-६ ई० के आर्य गजट व सद्धर्म प्रचारक के अंकों में स्वदेशी प्रचार के समाचार व लेख मिलते हैं। इन्हीं दिनों लाहौर में अनारकली समाज के उत्सव पर श्री यशवन्त सिंह वर्मा का गीत

'उनकी इज्जत भी क्या खाक जिनको पगड़ी दे परदेशी'

सुनकर बाजारों में अनेक ने अंग्रेजी टोप व पगड़ियां उतार कर नालियों में फेंकी। इस घटना का मूल्यांकन इतिहासकारों को करना होगा।[3]

ऋषि दयानन्द ने अपने शिष्यों में कैसी प्रखर राष्ट्रवादी भावनायें भरीं।

---

1. द्रष्टव्य आर्य गजट, ४ अगस्त, १८८७ ई०, पृ० ५
२. आर्य समाचार मेरठ, पृष्ठ ३०७-३०८ सन् १७७८, जिल्द नं० १०
३. वैदिक धर्म उर्दू साप्ताहिक में यशवन्त सिंह वर्मा पर प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु की लेख माला।

इसका एक उदाहरण यशस्वी इतिहासकार क्रान्तिवीर सावरकर ने दिया है। ऋषि के बलिदान के शीघ्र पश्चात् लार्ड रिपन भारत से स्वदेश लौटा। उसको काशी में विदाई देते हुए उसका बैल गाड़ी में जलूस निकाला गया। काशी के पण्डितों ने राज भक्ति के जोश में मैल गाड़ी के बैलों को खोल दिया और जुए में स्वयं जुत कर वायसराय को खींचा। जब लाहौर में आर्यसमाज के नेता लाला साईं दास जी को इस घटना का पता चला तो उन्हें इससे बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने कहा कि काशी के पण्डितों ने देश के माथे पर कलंक लगा दिया है।[1] ला० साईं दास जी की यह कड़क भावनायें आर्यसमाजियों के हृदय में व्याप्त जोश का प्रतिनिधित्व करती हैं।

राजनीति के क्षेत्र में आर्यसमाज के सेवकों ने जो बलिदान दिए हैं, उसकी चर्चा इस छोटे से शोध लेख में असम्भव है। श्याम जी कृष्ण वर्मा से लेकर हैदराबाद राज्य के गेराबाल्डी श्री पं० नरेन्द्र तक मातृभूमि पर सर्वस्व आहूत करने वाले आर्य वीरों की तिल-तिल जलने की गौरव गाथा पर कृतज्ञ देश वासी गर्व करेंगे। संक्षेप से एक झांकी प्रस्तुत की जाती है :—

१. विदेशों में ४० वर्ष तक भारतीय स्वाधीनता के लिए संघर्षरत रहने वाला तपःपूत श्याम जी कृष्ण वर्मा ऋषि का ही शिष्य था।

२. विदेशों में निर्वासन के कारण ४० वर्ष बिता कर स्वदेश लौटने वाला क्रान्ति वीर अजीत सिंह भी आर्यसमाज की देन है।

३. १८५७ ई० के विप्लव के पश्चात् सर्वप्रथम फांसी पाने वाले उ० प्र० के क्रान्तिकारी दल के प्रमुख वीर आर्यसमाजी ही थे, राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह आदि।

४. १८५७ ई० के पश्चात् सेना में विद्रोह का प्रचार करके फांसी पाने वाला प्रथम क्रान्तिवीर सोहन लाल आर्यसमाजी ही था।

---

१. द्रष्टव्य 'माझी जन्म ठेप' लेखक वीर सावरकर तथा लाजपतराय की आत्म कथा।

५. विदेश में प्रथम फांसी पाने वाला वीर मदनलाल भी आर्यसमाजी था।

६. देशी राज्यों (Indian States) में भी आर्यों का राष्ट्रवादी विचारों के कारण दमन होता रहा। देश भक्ति के अपराध में पटियाला राज्य ने सर्व-प्रथम देश भक्तों को निष्कासित किया, बन्दी बनाया व उन पर अभियोग चलाया। यह सन् १९०९ ई० की घटना है। ये सब लोग आर्य थे। इनमें से कुछ प्रमुख सज्जन थे —'राजा ज्वाला प्रसाद, ला० नारायणदत्त, महाशय रौनक राम शाद, रौनक सिंह जी, शंकर लाल जी, पृथ्वी चन्द्र जी, ला० पतराम व उनके सुपुत्र श्री दिलीप चन्द नरवाना।

७. भारत के वायसराय हार्डिंग पर बम्ब फेंकने के अपराध में बलिवेदी पर चढ़ने वाले व बन्दी होने वाले अधिक वीर भी आर्यसमाजी ही थे। यथा भाई बालमुकन्द, प्रताप सिंह वारहट व ला० बलराज आदि।

८. १९३१ ई० में एक आर्य हरिकृष्ण ने पंजाब के गर्वनर पर गोली चला-कर शासन को कम्पा दिया। इसी के भाई श्री भक्तराम ने मुसलमान पठान के वेश में नेता जी सुभाष को जर्मनी पहुंचाया था।

९. एक आर्य सेना अधिकारी चन्दन सिंह गढ़वाली ने पेशावर में सत्या-ग्रहियों पर गोली चलाने से इन्कार करके वर्षों जेल में काटे।

१०. केवल आर्यसमाज के ही एक संन्यासी को वायसराय के आदेश से स्वाधीनता संग्राम में बन्दी बनाया गया। केवल एक आर्य साधु पर ही एक प्रान्त के गवर्नर की हत्या के षड्यन्त्र का दोष लगाया गया। यह संन्यासी थे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी। इन पर सेना में विद्रोह फैलाने का भी अभियोग चला।

११. सारे भारत में केवल एक ही उपदेशक विद्यालय (The oligical College) की स्वाधीनता संग्राम में तलाशी ली गई और वह आर्यसमाज का उपदेशक विद्यालय लाहौर था।

१२. प्रथम सत्याग्रही जिस को न्यायालय के अपमान के लिए दण्डित किया गया, वह पं० मनसाराम वैदिक तोप सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् थे।

१३. केवल एक ही भारतीय वैज्ञानिक को स्वाधीनता संग्राम में बन्दी बनाया गया। वे थे श्री डा० सत्यप्रकाश जी।

१४. देश की स्वाधीनता के लिए केवल चार देशभक्त जीवित जलाए गये और वे चारों हैदरावाद के आर्य समाजी थे—कृष्णराव ईटेकर; उनकी पत्नी गोदावरी देवी, काशीनाथ धारूर तथा गोविन्द राव जिला बीदर।[1]

डी० ए० वी० कालेज कानपुर के छात्रावास में घुस कर अंग्रेजी शासन ने सालिगराम छात्र को गोलियां मार कर शहीद कर दिया। लाहौर डी० ए० वी० कालेज में आर्य युवक समाज के यशस्वी प्रधान प्रा० भगवान दास (जो इस संस्था के यशस्वी प्राचार्य रहे) को पीटने के लिए गई पुलिस ने उन्हीं के (Class Room) में उन्हीं की आकृति के एक और प्राध्यापक को लहूलुहान कर दिया। आर्यसमाज के गुरुकुलों व स्कूलों, कालेजों ने स्वाधीनता के लिए गौरवपूर्ण वलिदान देकर राष्ट्र की ठण्डी रंगों के गर्म रक्त का संचार किया।

आर्यसमाज ने राष्ट्रीय जागृति का जो विलक्षण कार्य किया, उसके फल स्वरूप देश के केवल एक ही राष्ट्रीय नेता को जामा मस्जिद के मिम्बर से, ईदगाह व सिखों के अकालतख्त से जन समूह को सम्बोधित करने का गर्व प्राप्त हुआ और वे थे आर्य संन्यासी श्रद्धानन्द जी।[2]

सामाजिक जागृति—रूढ़ियों एवं कुरीतियो से जर्जर भारतीय समाज को झंझोड़ने व जगाने का मुख्य श्रेय भी आर्यसमाज को ही जाता है। मराठी लेखक डा० सहस्रबुद्धे ने यथार्थ ही लिखा है कि उन्नीसवीं शताब्दी में पंजाब के शीर्षस्थ नेताओं में अधिकांश ब्राह्मणेतर वर्गों से आए इसका कारण आर्य-समाज द्वारा उत्पन्न जागृति है।[3]

आर्यसमाज में भी आज बिरले ही जन हैं जिनको यह पता हो कि आर्य-समाज में ऋषि दयानन्द के पश्चात् सबसे बड़े विद्वान् मनीषी पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी ब्राह्मण कुल में नहीं जन्मे थे। अपने तपोबल से विद्याबल से आर्य-समाज में वह सर्वमान्य ब्राह्मण बने और पण्डित की संज्ञा प्राप्त की। श्रीश्याम

१, द्रष्टव्य सार्वदेशिक की आर्यसमाज शताब्दी स्मारिका में प्रा० जिज्ञासु का लेख तथा लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द।

२. बन्दी घर के विचित्र अनुभव, सम्पादक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

३. जागृतिक आणी व्यक्तित्व, ले० डा० सहस्रबुद्धे।

जी कृष्ण वर्मा भी उसी युग में पण्डित की पदवी से विभूषित हुए परन्तु, उन्हें पण्डित की उपाधि जर्मनी से प्राप्त हुई। आर्यसमाज में वे भी एक शिरोमणि विद्वान् माने जाते थे। यह सामाजिक क्रान्ति केवल पंजाब तक ही सीमित न रही, उ० प्र० राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र, केरल व तामिलनाडु तक आर्यसमाजियों ने जातपात के यह बन्धन तोड़कर दिखाए। जहां ब्राह्मण घरों में जन्मे पं० लेखराम, पं० गणपति शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द सरीखे दिग्गज विद्वानों का आर्यसमाज को नेतृत्व प्राप्त रहा वहां स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, महात्मा नारायण स्वामी, पं० गंगा प्रसाद चीफ जज, कुंवर हुकम सिंह, चौधरी पीरू सिंह, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, आचार्य भद्रसेन जी, भक्त फूल सिंह जी, पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, पं० नरेन्द्र जी हैदराबाद से लेकर आचार्य प्रियव्रत जी व आचार्य नरेन्द्रभूषण केरलीय तक आर्यसमाज ने एक-से-एक बढ़कर ऐसे नेता व विद्वान् पैदा किए हैं। जो ब्राह्मणेतर वर्गों में जन्मे।

इस समय भी आर्यसमाज के लिए ब्राह्मण मिशनरी निर्माण करने वाले आर्यसमाज के सबसे बड़े महाविद्यालय दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सत्यप्रिय आचार्य जन्म से ब्राह्मण नहीं। दो अन्य विद्वान् प्राध्यापक श्री पं० कर्मवीर व पं० विश्वामित्र जी मराठे हैं। चौथे श्री पं० दयानन्द जी भी ब्राह्मणेतर कुल में जन्मे हैं।

ऋषि ने स्वयं सर्वप्रथम एक मुसलमान मुहमद उमर को अलखधारी बनाया फिर एक पादरी खड़क सिंह को शुद्ध कर आर्य बनाया। जाति-पाँति के उसी दूषित युग में खड़क सिंह की पुत्रियां आर्य घराने में ब्याही गई। ऋषि के कुछ समय पश्चात् अब्दुल अजीज अजमेर में शुद्ध हो कर ला० हरजस राय बने।[1] अमृतसर के किसी आर्य कुल में उनका विवाह हुआ। वह बड़े ऊंचे विद्वान् और पंजाब के प्रतिष्ठत व्यक्ति थे।

आर्यसमाज के प्रयत्नों से ऐसी जागृति आई कि जन्म के मुसलमान व दलित वर्ग (तथाकथित अस्पृश्य वर्ग) में जन्मे व्यक्तियों ने आर्यसमाजों में ऊंचे से ऊंचा

---

१. पं० लेखराम जी ने लिखा है कि परोपकारिणी सभा ने इन्हें शुद्ध किया। महात्मा हंसराज जी ने लिखा है कि लाहौर में शुद्ध किए गए। पढ़िए महात्मा हंसराज ग्रंथावलि।

स्थान पाया। दलित वर्ग में जन्मे सबसे पहले प्रिंसिपल आर्यसमाज के मान्य श्री रामदास जी पूर्व लोक सभा सदस्य हैं।

आर्यसमाज शताब्दी समारोह दिल्ली में देश-विदेश के जिन ३०-३१ विद्वानों का अभिनन्दन किया गया उनमें से दो थे आर्यसमाज के ९५ वर्षीय महान् संन्यासी विज्ञानानन्द जी तथा तपोधन आचार्य देव प्रकाश जी। ये दोनों जन्म से मुसलमान थे। सारे हिन्दू समाज में ये दोनों विभूतियां पूज्य मानी जाती थीं। दलित वर्ग में जन्मे अनेक व्यक्ति आर्यसमाज के प्रतिष्ठित व पूज्य संन्यासी व विद्वान् बने। केवल एक श्री स्वामी वेधड़क जी का नाम लेना ही पर्याप्त है। वे भारतीय स्वाधीनता संग्राम में दस वार जेल गए। वे हैदराबाद सत्याग्रह में भी १९३९ ई० में जेल गये थे।

समाज सुधार के क्षेत्र में नारी उत्थान के लिए आर्यसमाज ने क्रान्तिकारी कार्य किया। ऋषि दयानन्द ने दो-देवियों को विशेष रूप से नारियों में सेवा कार्य व धर्म-प्रचार की प्रेरणा दी। एक तो थी पंडिता रमाबाई जो ईसाई बन गई। उसने सन् १८८२ ई० में स्त्रियों के लिए बम्बई में 'आर्य महिमा सभा' नाम की एक संस्था का निर्माण किया।[1] दूसरी थी पंजाब की एक देवी माता भगवती जिसने उत्तर भारत में अपने जन्म स्थान हरियाणा ग्राम में नारी शिक्षा के आन्दोलन को जन्म दिया। अपने धर्म भाव प्रचार, सेवा व नारी शिक्षा के लिए वह अत्यन्त पूज्या देवी समझी जाती थीं। महात्मा हंसराज ने जब डी० ए० वी० आन्दोलन के लिए जीवनदान की घोषणा की तो उस दिन उनकी घोषणा से पूर्व इन्हीं माता भगवती का डी०ए०वी स्कूल की स्थापना के लिए एक बड़ा प्रेरणाप्रद व ओजस्वी व्याख्यान हुआ था।[2] धार्मिक क्षेत्र में शीघ्र ही उन्होंने बड़ी प्रसिद्धि पाई।

रेवाड़ी के श्रीयुत राव युधिष्ठिर सिंह की पत्नी प्रथम भारतीय महिला थी जिनको किसी धार्मिक संगठन ने अपना पद अधिकारी बनाया। वह आर्य-समाज की प्रधाना चुनी गईं।[3] बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बहु-विवाह

---

१. द्रष्टव्य आर्य दर्पण जनवरी १८८३ ई०, पृ० ३०१।

२. 'आर्य समाचार' मेरठ। पृ० ४०१ से ४०८ चैत्र, १९४२ वि०

३. आर्य गजट फिरोजपुर छावनी के किसी अंक में यह समाचार छपा था। तिथि खोजनी पड़ेगी।

उन्मूलन के लिए आर्य-समाजियों ने हड्डियां तुड़वाईं व सिर फुड़वाए हैं। हैदराबाद में विधवा विवाह के लिए कानून बनवाने में प्रयत्नों में न्यायमूर्ति केशव जैसे लोकमान्य आर्य नेता को धक्के मारे गए।[1]

जब आर्यसमाज द्वारा कन्या महाविद्यालय जालंधर उत्तर भारत का प्रथम महिला कालेज स्थापित हुआ तब पौराणिक व देव समाजी तो इसके विरोधी थे ही आर्यसमाज में भी कुछ लोग नारी शिक्षा के तो पक्ष में थे परन्तु नारियों को उच्च शिक्षा देने के पक्ष में न थे।

सामाजिक क्षेत्र में जागृति का सबसे बड़ा कार्य, गुण, कर्म, स्वभाव से विवाह की रीति को चलाना व जन्म की जाति-पाति को मिटाना है। आर्यसमाज के आरम्भिक काल में महात्मा मुंशीराम जी व बैरिस्टर रोशन लाल जी ने जाति-बन्धन तोड़कर युग की धारा को मोड़कर दिखाया।

इस दिशा में मराठवाड़ा का आर्यसमाज सबसे आगे रहा है। लातूर के डा० डी० आर दास (अब रघुत्तम मुनि) आर्यसमाज में इस दृष्टि से आदर्श माने जाते हैं। स्वाधीनता सेनानी स्वर्गीय आर्य नेता शेषराव बाघमारे, श्री भाई वंशीलाल जी के नाम से महाराष्ट्र व निजाम राज्य के लोग परिचित हैं। इन लोगों ने इस क्षेत्र में असह्य कष्ट सहे। गुजरात में डा० चिरञ्जीलाल भारद्वाज, श्री आत्माराम अमृतसरी ने अस्पृश्यता व जाति भेद निवारण के लिए जीवन लगा दिया। आप को स्मरण करवाना चाहता हूं कि विख्यात इतिहास-कार और शिक्षा शास्त्री डा० बाल कृष्ण कोल्हापुर भी इन बन्धनों को तोड़ कर आगे बढ़े। मराठवाड़ा में तो गुंजोटी जैसे कस्बे में ही कई आर्य परिवारों ने अन्तर्जातीय व अन्तः प्रान्तीय विवाह किए हैं। आज से अर्द्ध शताब्दी पूर्व जाति-बन्धन तोड़ने में आचार्य प्रवर भद्रसेन जी अजमेर व श्री गोविन्दराम जी देहली ने महात्मा मुन्शीराम जी के उत्साह की याद ताजा कर दी। इन में से एक थे आर्यसमाज के मूर्धन्य विद्वान् और दूसरे थे सुप्रसिद्ध आर्य प्रकाशक थे।

अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज के योगदान की चर्चा का यहां सविस्तार वर्णन नहीं कर सकता। आर्यवीर रामचन्द्र दलितोद्धार के लिए भीषण लाठी प्रहार से वीरगति पा गये। अस्पृश्यता निवारण के लिए

---

१. द्रष्टव्य प्राचार्य कृष्ण दत्त लिखित न्यायमूर्ति केशवराव तथा प्रेरणा कलश ले० राजेन्द्र जिज्ञासु

ही वृद्ध अवस्था में शूरता की शान श्रद्धानन्द केरल के वायकम सत्याग्रह का नेतृत्व करने पहुंचे। केरल वे के (Uncrowned King) स्वर्गीय श्रीमन्नम ने स्वयं हमें सगर्व बताया था कि स्वामी जी के उस सत्याग्रह के एक सैनिक हैं।

स्वाभिमान जगाया—ऋषि ने भारत का गौरव गाते हुए लिखा है कि यही वह पारस मणि पत्थर है जिसे छूकर विदेशी लोहा स्वर्ण बन गया। ऋषि दयानन्द के इन शब्दों ने आर्यों में देश का स्वाभिमान जगाया। दीवान हरविलास शारदा का सुप्रसिद्ध ग्रंथ (Hindu Superioity) राष्ट्र कवि मैथलीशरण गुप्त का भारत भारती, पं० नानक चन्द वैरिस्ट का (Wisdom of India) श्री प्रफुलचन्द्र राय का (Hindu Chemistry) तथा (Shiping in Ancient India) आदि ग्रंथ इसी का सुखद फल थे। आर्यसमाजी गर्ज कर गाया करते थे—

'कभी हम बुलन्द इकबाल थे तुम्हें याद हो कि न याद हो' आर्यसमाज ने भद्दे नामों के रखने की कुरीति मिटाई। सार्थक नाम रखे जाने लगे और सारे भारत में अब आर्यों के एक जैसे नाम हैं। आर्यसमाज में जमनादास (जैमिनि) बने, चमन लाल (विश्व-बन्धु) वेदव्रत, राधाकृष्ण महाशय, कृष्ण, हवेलीराम, वेद व्यास और कलम के दगड़ू देवदत्त बने।

प्रान्तीयता के विरुद्ध जन-जागरण—सब प्रान्त उन्नत हों, जैसे शरीर के सब अंग स्वस्थ व निरोग हों तभी शरीर पुष्ट माना जाता है। ऐसे ही देश के सब भागों के निवासी आगे बढ़ें परन्तु प्रान्त-भाव न हो। हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह आर्यों के कड़क राष्ट्रीय भाव का एक उदाहरण है। यही एक सत्याग्रह है जिसमें देश के एक भाग के पीड़ित लोगों के लिए देश के सब भागों के सत्याग्रही आए और तीस से ऊपर ने वीरगति पाई। इससे पूर्व किसी भी प्रांतीय सत्याग्रह यथा बारदोली या चम्पारण आदि में यह विराट रूप न देखा गया।[1]

लोकहित कार्यों के लिए दान की प्रणाली आर्यसमाज ने ही चलाई। भूकम्प, अकाल, बाढ़ पीड़ितों के लिए दान, गुरुकुलों कालेजों के लिए अनाथालयों के लिए दान की प्रथा आर्यसमाज का एक इतिहास है। ऋषि दयानन्द के पश्चात् श्री मथुरादास, ला० लाजपत राय, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द, दीनबन्धु रलाराम, प्रि० मेहर चन्द, प्रि० डा० दीवानचन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, महाशय खुशहालचन्द, प्रि० ज्ञानचन्द, हैदराबाद के हुतात्मा श्याम भाई, श्री ला.

१. देखिए—लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द, ले० राजेन्द्र जिज्ञासु

गया प्रसाद, ताऊ चन्दुलाल, डा० ललिता प्रसाद जी, स्वामी सर्वानन्द जी, श्री ओमप्रकाश त्यागी, श्री देवव्रत बम्बई की सेवाओं पर आर्यसमाज ही नहीं, मानव समाज गौरव कर सकता है। श्री (C. Y. Chintamani) ने तभी तो लिखा (Where there is a work to do there one does not missthe Arya Samaj)

निर्भय बनाया—ऋषि दयानंद ने जिस निर्भीकता से सत्य का प्रचार व अंध-विश्वास का खण्डन किया, उसका आर्यसमाजियों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। आर्यों का एक जयघोष है 'जो बोले सो अभय'—वैदिक धर्मकी जय'।

१८९३ ई० में चिरंजीव लाल आर्योपदेशक ने वीर-गति पाई, अंग्रेजी शासन-काल में यह प्रथम सुधारक कार्यकर्त्ता था, जो अपनी मान्यताओं के लिए जेल गया और कठोर कष्ट सहे। फिर हैदराबाद में पं० बालकृष्ण बन्दी बने। समाज-सुधार, धर्म-प्रचार, राष्ट्रसेवा के लिए आर्य ऐसे निर्भीक बने कि विश्व के किसी भी धार्मिक व सुधारकवादी आन्दोलन ने अपने जीवन के प्रथम सौ वर्षों में इतने बलिदान नहीं दिये जितने कि आर्यसमाज ने। जन-जागरण की घुट्टी पिलाते हुए पुराने आर्य गाया करते थे—

खिदमते खल्क में जी कि मर जायेंगे। नाम दुनियां में अपना वे कर जावेंगे॥

स्वाधीनना के मन्त्र का जप हम सदा करें,

सेवा में मातृ भूमि के तन मन निसार हो।

कर्म करते कदम को बढ़ाते चलो। तेज खंजर से सीना अड़ाते चलो।

ऐसे संस्कारों व विचारों में पले आर्यों ने देश को अनेक दिलजले दीवाने सपूत दिये।

धार्मिक क्षेत्र में :—आर्यसमाज के प्रवर्त्तक विश्व के प्रथम विचारक हैं जिन्होंने विज्ञान का स्वागत, अभिनन्दन किया। आर्यसमाज ने जादू-टोने, भूत-प्रेत, तावीज-गण्डे, जड़-पूजा, फलित ज्योतिष आदि का अन्ध-विश्वास मिटाने का प्रयास किया है। आर्यसमाज सृष्टि नियम विरुद्ध चमत्कारों को नहीं मानता। इसके प्रचार का बहुत प्रभाव पड़ा है। यह है भारतीय जन-जागरण के लिए आर्यसमाज के योगदान की संक्षिप्त झांकी।

उन्नीसवीं शताब्दि का सच्चा बलिदान

भारत वर्ष ऐ दोस्तो सुंसान हो गया।
वह शेर मर्द धर्म पे कुर्बान हो गया ॥

अन्धेरे के उपासक

ऐ कालचक्र ! तेरी कुचाल का किसको विश्वास हो सकता है ? कौन-सा उजड़ा स्थान है जिसको तूने उद्यान न बनाया हो ! कौन-सा उपवन है जिस को वन न बना कर दिखाया हो, लाखों राजाओं को भिक्षा पात्र पकड़वा दिया, सहस्रों भिखारियों को राजा बना दिया। तेरी प्रत्येक चाल निराली विधि दिखलाती हुई मनुष्यों की बुद्धि को चकराती है। बड़े-बड़े व्यक्ति तेरी तलवार की धार का शिकार हुए हैं। प्लेटो (Plato) सरीखे तत्त्ववेत्ता तेरी चाल को जानने में बेबस हैं। कहीं पर हर्षोल्लास के बाजे बज रहे हैं। कहीं पर शोक सन्ताप व्याप्त हो रहा है। जिस समय संसार को आलोकित करने वाला सूर्य अस्त हो जाता है, संसार के लोग हाथ मलते हुए काम चलाने वाले दीपकों व लैम्पों की खोज करते हैं। परन्तु, अभागा उल्लू सदैव जिस घर पर बैठता है उसी का विनाश मांगता है। भानु के अस्त होते ही अपनी घोर घृणित ध्वनि से, प्रसन्नता से चहचहाता है। वह नहीं देखता कि इस दिनकर के छिपने से संसार के लोगों को कितनी हानि व परेशानी होती है क्योंकि उसे तो सूर्य के होते हुए दीखता ही कुछ नहीं। वह भयभीत होकर दिवाकर के अस्त होने की याचना करता है।

यह किसकी कहानी है

प्यारे मित्रो ! आज सच्चाई के जिस सूर्य, उन्नसीवीं शताब्दि के सच्चे रक्तसाक्षी, गवेषणा के भण्डार पं० लेखराम आर्यपथिक की मृत्यु का शोर

चारों ओर फैल रहा है। लाखों व्यक्ति उस वीर के निधन पर नीर बहा रहे हैं। जिस ओर भी निहारो, जिससे भी बात करो वहां उसी वीर पुरुष के चल बसने की चर्चा हो रही है। यह कौन था? यह वही वीर पुरुष अन्वेषक गवेषक है जिसकी खोज ने मजहब इस्लाम की धज्जियां उड़ा दी। जब इस्लाम वालों के पास बुद्धि, युक्ति व समुचित प्रमाण न रहे तो इस्लाम ने अपनी दीन अवस्था को देखकर और अपने अनुयायियों को दिन-प्रति-दिन अपनी मान्यताओं से च्युत होता देखकर इस नर-नाहर को भयभीत करने के लिए न्यायालय में अभियोग चला दिया परन्तु जिस नर-केसरी ने वैदिक धर्म की रक्षा और इस्लाम के असत्य को दूर करने का सङ्कल्प किया था, उसने ऋषि सन्तान को धर्म के मार्ग पर चलाने के लिए सांसारिक सुखों पर लात मार दी, जिसकी आत्मा हिन्दू जाति को मुसलमाव और ईसाईयों के हाथ से नष्ट होता देखकर इस बात का दृढ़ निश्चय कर चुका था कि चाहे संसार इधर से उधर पलट जावे, चाहे उसके शरीर का अंग-अंग काट लिया जावे परन्तु वैदिक धर्म को कभी न छोड़ेगा।[1] उसने अभियोग की तनिक भी चिन्ता न की। करता किस प्रकार से जबकि उस वीर का एक भाई मरने वाला था, दूसरी ओर आर्यसमाज को एक हानि होने वाली थी। उस धर्मवीर ने भाई से धर्म को अधिक प्यारा जाना।

शोक व मोह पर विजय

उसका भाई उसकी अनुपस्थिति में चल बसा। इसी प्रकार दूसरा भाई भी ईश्वर के विधि-विधान के अनुसार इस संसार से चल बसा परन्तु इस ईश्वर विश्वासी ने धीरज की डोरी को हाथ से न छोड़ा। जब इनका इकलौता पुत्र अपनी छोटी-सी आयु में इस असार-संसार से विदा हो गया तो भी यह नर-नाहर ईश्वरेच्छा में ही सन्तुष्ट रहा। भला, जिस धर्मवीर का इतने कष्टों के

---

1. मिर्जा गुलाम अहमद ने अपनी एक फारसी कविता में पं० जी को तलवार से डरने की धमकी दी थी। पं० जी ने अपनी स्वरचित फारसी कविता में उत्तर दिया था कि मेरा अंग-अंग काट दिया जावे तो भी मैं इस धर्म पथ से न हटूंगा। ----'जिज्ञासु'

होते हुए भी ईश्वर पर विश्वास नहीं डोला। जिसने बड़े-बड़े विकट स्थानों पर जहां पल-पल क्षण-क्षण में प्राण के जाने का भय हो।

आदर्श धर्म रक्षक

वैदिक धर्म का नाद बजाया हो। जिस नरसिंह ने पेशावर जैसे रक्त-पिपासु स्थान पर आर्य धर्म की जी, जान से सेवा की हो। जिस नर-सिंह ने चौधरी घासी राम जी[1] के मुसलमान होने की सूचना पाकर उनकी रक्षा के लिए अपनी सरकारी सर्विस से भी त्याग पत्र दे दिया, जिस नर-नाहर ने मिर्जा गुलाम अहमद कादयानी के मिथ्या दावों को झुठला कर दिखाया हो, उस नर-सिंह को उस अभियोग से क्या भय हो सकता है जब कि उस धर्मवीर के लेखों में युक्ति व प्रमाण के बिना एक भी बात अपनी ओर से न थी। स्थान-स्थान पर कुरान व हदीस[2] एवं इतिहास की साक्षियाँ दी थीं फिर यह अभियोग कैसे चल सकता था ?

सांच को आंच नहीं

विरोधियों ने बहुत हाथ-पैर मारे परन्तु यह अभियोग जिला देहली के न्यायालय से खारिज हो गया, इस्लामी भाईयों ने अपने मिथ्या दावा को अपील करके न्यायालय तक पहुंचाया। बड़े यत्न किये कि किसी प्रकार इस नर-केसरी तथा धर्मवीर को कष्ट पहुंचायें परन्तु सांच को आंच नहीं, इस विचार के अनुसार वह अपील भी उड़ गई। इस पर मुसलमानों को बड़ा जोश आया परन्तु करते भी तो क्या ? और औरंगजेब का युग तो था नहीं कि निर्दोष गुरु तेग-बहादुर को मरवा डालते। न किसी अन्य मुसलमान शासक का युग था, जिसमें हकीकत राय आदि छोटे-छोटे बालकों को निरपराध नष्ट कर देते।[3] इस युग

---

१. यह चौधरी घासी राम कहां के निवासी थे ? यह पता नहीं चल सका। पं० जी के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं घटीं। सैकड़ों को धर्म से च्युत होने से आपने बचाया। —'जिज्ञासु'

२. इस्लामी साहित्य का एक भाग। हदीसों में हजरत मुहम्मद के कथन व कहानियां संग्रहीत की गई हैं। —'जिज्ञासु'

३. विचित्र बात है कि आज के युग में भी मुसलमानी देशों में दूसरों को उपासना की कतई स्वतन्त्रता नहीं। न ही नागरिक के रूप में समान अधिकार प्राप्त हैं। —'जिज्ञासु'

में अंग्रेजों का राज था, इस कारण आगे उच्चन्यायालय(Chief Court) लाहौर में अपील कर दी परन्तु युक्ति विहीन दावा कहीं भी फूल फल न सका। अपील वहाँ से भी खारिज हो गई। अब तो उनके क्रोध की कोई सीमा ही न रही। जहाद (मुसलमानों द्वारा दूसरों पर आक्रमण युद्ध) का विचार आया, यह अंग्रेजी राज में असम्भव था। जब कोई बात बनती न दीखी तो अपनी प्रकृति के अनुसार अर्थात् छल-कपट के सहारे खुदा से याचना करते हुए उस धर्मवीर को कूट-कपट से मारने की योजना बना ली।

वहां क्या था कि एक मुसलमान नहीं-नहीं···अन्यायी, अधर्मी, उस नर-सिंह के पीछे लग गया और उनसे कहा —मैं हिन्दू हूं, भूल से मुसलमान हो गया था अब पुनः शुद्ध होना चाहता हूं। आप मुझे शुद्ध कर दीजिए। उस सच्चे वीर पुरुष को उसकी दुष्टता की जानकारी थी, अतः उन्होंने स्वीकार कर लिया पं० जी मुलतान आदि नगरों में बाहर प्रचार यात्रा पर चले गये। उसको अवसर न मिला। अन्त को छः मार्च की रात को सात बजे जब कि पं० लेखराम अभी घर में बैठे हुए थे, वह दुष्ट दुर्भावना से आया और उनसे कहा आप मुझे वह पुस्तक दिखलावें। उन्हें क्या पता था, कि उसकी नियत (भावना) क्या है। वह इकदम पुस्तक लेने के लिए उठे और जब उन्होंने अलमारी में हाथ डाला और उसकी ओर पीठ हो गई तो उस निर्दयी क्रूर ने झटपट उनके पेट में छुरा चला दिया। जिसके कारण यह गिर पड़े और वह अधम भाग गया।०

वीरोचित मृत्यु

लोग पं० जी के शरीर को हस्पताल में ले गये जहां जाकर रात के दो बजे उनका आत्मा इस नश्वरदेह को परित्याग करके अमर पद को प्राप्त कर गया।

एक प्रत्यक्षदर्शी का कथन

प्रिय मित्रो! हमारे पास मेडिकल कालेज के एक विद्यार्थी का पत्र आया

---

० स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा है कि पं० जी को उनकी वृद्धा माता ने पुकारा तब वह उठे, अंगड़ाई ली। घातक ने छुरा चला दिया। देखिए रक्त साक्षी पं० लेखराम, पृ० १३४ —'जिज्ञासु'

तो हम पढ़कर चकित रह गये कि इतने ● भयंकर घाव के होने पर वह सात घण्टे तक जीवित रहे परन्तु मुख से एक बार भी हाय न निकली। जैसे पहिले निर्भीक, दृढ़ निश्चय वाले तथा ईश्वर विश्वासी थे वैसे ही इस विपत्ति में भी रहे। सत्य को जिस प्रकार अपना मित्र बनाया हुआ था, उसी प्रकार धीरज से भी पृथक् न हुए।

आर्यगण ! क्या पं० लेखराम ने किसी को मारा था जिसके लिए वह इस दण्ड का पात्र था ? क्या उसकी इससे (घातक) किसी बात पर शत्रुता थी ? कतई नहीं। वह तो आर्य धर्म का प्रधान सेनापति था, जिसने अपनी अकाट्य युक्तियों की तोपागार (Artillery) से इस्लामी अंधविश्वास पाखण्ड के दुर्ग की नींव को हिला दिया, जिसने अनेक हिन्दुओं को इस्लाम के गढ़े में गिरने से बचा दिया था। जिसके सम्मुख मुसलमानों में यह शक्ति न थी कि वे किसी हिन्दू को मुसलमान बना सकते। सैंकड़ों शास्त्रार्थ हुए परन्तु, इस्लाम को सिवाय जहाज (Crusade) के कोई तर्क न सूझा।

आर्यगण ! जब कि लेखराम को इस्लाम से कोई निजी द्वेष न था, उन्हें दुःख था कि वे तुम्हारे भाईयों को लूटना चाहते थे। यह बचाता था। वे हमारे वेद शास्त्र, ऋषि-मुनियों पर मिथ्या दोष लगाते थे। यह अपनी प्रबल युक्तियों से, खोजपूर्ण प्रमाणों से उसका उत्तर देता था। यह भी उसका दोष था। इसके बदले में उसे यह दण्ड मिला। नहीं। उसने तो तुम्हारी रक्षा में अपना जीवन तक न्यौछावर कर दिया। इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है।०

आर्यगण ! अब आप सोचिए ! क्या यह छुरी पं० लेखराम के पेट में लगी है ? नहीं, नहीं, यह छुरी आर्यधर्म पर चली है। क्या इस छुरी से पं० लेखराम की जान गई अथवा उसकी कोई हानि हुई ? नहीं, नहीं, वह तो अपने जीवन की आहुति देकर कर्त्तव्य का पालन करता हुआ रक्त साक्षी बन गया। यदि इससे हानि हुई है तो तुम्हारे धर्म की तथा धक्का लगा है तो

● वह विद्यार्थी पं० जी के अन्त समय में हस्पताल में ही था। —'जिज्ञासु'

० इस वाक्य का आगे पीछे से कोई सम्बन्ध नहीं। कोई पंक्ति छुटी या इधर-उधर हो गई। —'जिज्ञासु'

वैदिक धर्म को किंवा उन लोगों को जिनको वह इस्लाम के पंजे से निकाल कर वैदिक धर्म में लाता।

आर्यगण ! क्या आप नाशुकरे बनेंगे ! नहीं। नहीं। तुम्हारी कृतज्ञता को तो युग जानता है। क्या तुम लेखराम के मिशन को अधूरा छोड़कर वैदिक धर्म को क्षति पहुंचाने में सहमत हुए ? कतई नहीं। कौन मूर्ख है जो इस समय स्वार्थ में पड़कर आर्य जाति को कृतघात के कलंक से कलंकित करने के लिए उद्यत होगा। कौन अधम है जो इस सच्चे वीर पुरुष के ओजपूर्ण भाषणों का स्मरण करके अश्रु न बहाता होता। वह कौन है जो आर्यकुल में जन्मा है, इस समय जिसका हृदय घायल नहीं है। वह कौन है जो इस समय सच्ची उदारता तथा सहानुभूति न दिखला कर धर्म विरोधियों को यह न दिखला देगा कि वैदिक धर्म मृत नहीं। आर्य जाति नाशुकरी नहीं (विरोधियों को बताना होगा)+ जहां तुम लेखराम का वध करके यह समझ लो कि आर्य धर्म का कोई रक्षक नहीं अथवा इस्लामी आक्रमणों का कोई उत्तर देने वाले नहीं अपितु, मुझे विश्वास है कि लोग धर्मवीर की स्मृति में इस प्रकार से कार्य करेंगे, जिससे संसार को विदित हो जावे कि आर्य जाति वाक्शूर नहीं अपितु, सच्ची कृतज्ञता व धन्यवादी होने का भाव इसमें है जिससे आपकी जाति के लोकों में उत्साह उत्पन्न हो और वे सांसारिक स्वार्थों को तजकर धर्म के कार्यों में जुट जावें।

प्रिय पाठकवृन्द ! आप धर्मनिष्ठ सज्जनों ने निश्चय किया है कि उस वीर पुरुष का मिशन पूरा करने के उद्देश्य से प्रत्येक व्यक्ति को एक मास की आय दान कर देनी चाहिए तथा इस प्रकार से प्राप्त धन से पचास सहस्र रुपये एकत्रित करके निम्न प्रकार से कार्य चलाना चाहिए :—×

यत्न करना हमारा कर्त्तव्य है, सहायता प्रभु देते हैं। आओ, ऋषि सन्तानो !

+अगले वाक्य के प्रसंगानुसार भाव स्पष्ट करने के लिए कोष्ठों के ये शब्द हमने जोड़े हैं। मूल में ये नहीं हैं। —'जिज्ञासु'

× इसके पश्चात् लगभग चार पृष्ठ हमने छोड़ दिये है। उनमें पं० लेखराम स्मारक निधि के लिए सुझाव मात्र हैं। आज उनकी इतनी आवश्यकता नहीं। —'जिज्ञासु'

सब मिलकर एक बार पुनः भारत को ऋषि भूमि बनाने का प्रयत्न करें और यहां पर जो अधर्म के फैलने से आज अकाल, भुखमरी, अभियोग वृत्ति आदि हमारी दृष्टि में आते हैं, इन सबको नष्ट कर डालें, इस महायज्ञ के पूरा करने के लिए पं० लेखराम का बलिदान तीसरी आहुति हैं।+ हमारा कर्त्तव्य है कि जब तक यह महायज्ञ सम्पूर्ण न हो तब तक हम नये-नये बलिदानी देते जावें।

प्रिय पाठकवृन्द ! आप लोगों के यत्न से पं० लेखराम का मिशन पूरा होगा। आज तक जो इस्लाम भारत में फैला है वह हिन्दुओं की दुर्बलता है। उन्होंने बिगड़े हुए भाईओं को वापिस नहीं लिया और मजहब इस्लाम के खण्डन पर कटिबद्ध नहीं हुए● अन्यथा यह कभी सम्भव न था कि भारत भूमि में इस प्रकार का मत चल सकता जिसकी मान्यता ही संसार का अहित करना हो० आज जितने भी मुसलमान दीखते हैं, ये सब हमारे भाई हैं जिनको इस उल्टी शिक्षा ने पथभ्रष्ट करके इस प्रकार का बना दिया है। आपका कर्त्तव्य है कि आप इस अविद्या की शिक्षा को नष्ट करके इनको विद्या की ओर प्रवृत्त करें !

●

+ इस युग में वैदिक धर्म पर सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने जान वारी। दूसरे रक्त साक्षी वीर चिरंजी लाल थे और तीसरे बलिदानी लेखराम थे।

—'जिज्ञासु'

● मुसलमानी मत अपनी सैद्धान्तिक विशेषता व प्रचार से तो बहुत कम फैला है। तलवार से फैला है या बहुपत्नी प्रथा के कारण। आज कई कामांध किसी स्त्री से अनैतिक सम्बन्धों के पश्चात् विवाह के लिए मुसलामान बनते हैं। मुसलमानों ने हिन्दुओं की मान्यताओं के खण्डन में सदा पहिल की है और बड़ी पुस्तकें लिखी हैं।]

० जहां-जहां इस्लाम फैलता है, वहीं-वहीं उन देशों में पृथकता किंवा विभाजन की मांग का आन्दोलन चलाया जाता है। मुसलमान देशों में जनमत का कहीं भी आदर नहीं। सर्वत्र गणतन्त्र की बजाए GUN (बन्दूक) तन्त्र है, इन देशों में इतनी राजनैतिक हत्याओं का कारण ? —'जिज्ञासु'

कवियों की वाणी से

जो वेद पाक से पुखता अकीदत हो तो ऐसी हो
जो वैदिक धर्म से सच्ची मुहब्बत हो तो ऐसी हो
हो सरगर्मी तो ऐसी हो हमियत हो तो ऐसी हो
अशायत में मरे हक की शहादत हो तो ऐसी हो
गजब है शाद गर उसकी वसीयत भूल जाएं हम
मुनासिब है कि कुछ जोरे कलम अपना दिखाएं हम

—धर्मवीर स्वर्गीय महाशय रोनक राम 'शाद'

●

छुरे गोलियां तीर कोई चलाए
धधकती हुई आग में भी जलाए
निकाले भले जान भी कोई तन से
न निकलेगा प्रिय वेद का प्यार मन से

—कविरत्न 'प्रकाश' जी

●

सिवा उसके किसी की भी नहीं परवाह है मुझको।
भले सब रुष्ट हो जावें, सुपथ यह मैं न छोड़ूंगा॥

—प्रा० सत्यपाल जी 'सरस'

●

आफरीं सद आफरीं बर कारे तो
कस न करदा ई चुनीं दर राहेओ

—पं० शान्ति स्वरूप जी के लेख से

●

योगेश्वर महाराज दयानन्द

तर्क.तोप से ढोंग-ढांग के दुर्ग ढाने वाले आर्यसमाज में ही कितनी निःसार, अप्रमाणिक, वेद-विरुद्ध धारणाओं ने जड़ें जमा रखी हैं। यह देखकर बड़ा दुःख व आश्चर्य होता है। स्वाध्याय व साहित्य की रुचि कम होने का ही यह दुखद फल है। इन प्रचलित भ्रान्तियों में से एक यह है कि यह लोक-हित में जन-कल्याण की भावना से महर्षि ने योगाभ्यास किंवा समाधि को छोड़ दिया। यह भ्रान्ति किसके मस्तिष्क की उपज है यह तो कहना— लिखना अभी कठिन है। हमारा एतद्विषयक अनुसन्धान अभी चल रहा है। लगता है कि थ्यूसाफिकल वालों की ही यह कृपा है। आर्यसमाज में संस्थावादी घुसे अनार्य लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए इस भ्रान्ति को अधिक प्रचारित किया है।

इसको आर्यसमाज के भावुक 'चटपटे भाषण देने वाले वक्ताओं ने इतना प्रचारित किया कि भजनीकों ने इस आशय के भजन रच डाले। राजनीति की जिनको चाट है उनको और क्या चाहिए था ! वे भी इसे ले उड़े। दुष्परिणाम इसके सामने हैं। आर्यसमाज में इसी की आड़ लेकर कुछ तत्त्वों ने उपासना की प्रवृत्ति को पनपने न दिया। आर्यसमाज मन्दिर पुत्री पाठशालएं बन के रह गए। उपासनालय अथवा सत्संग भवन नहीं। इसका ही दुष्परिणाम है कि लोगों ने महर्षि को एक सुधारक मात्र जाना व माना। कविवर रामधारीसिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में परमहंस रामकृष्ण के साथ महर्षि की भेंट का उल्लेख करते हुए श्री रामकृष्ण के मुख से महर्षि के बारे में जो वाक्य कहलवाए हैं, वे पढ़ कर हृदय पर चोट लगती है। खेद है कि उसका सप्रमाण उत्तर देने का प्रयास ही न किया गया। यह एक उदाहरण है। हम ऐसे कई उदाहरण दे सकते हैं।

हम भी इसी भ्रान्ति के शिकार थे। 'आर्याभिविनय; ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका म,हर्षि के वेद भाष्य' को पढ़ने का जब गम्भीर प्रयास किया तो आंखें

खुल गईं। महर्षि के जीवन चरित्र का गहन अध्ययन चल रहा था। सत्य का साक्षात्कार हो गया। हमने भ्रमोच्छेदन के लिए तब कमर कस ली। गत दिनों एक विद्वान् मित्र ने एक आर्य पत्रिका के सम्पादकीय में जब लिखा कि महर्षि ने समाधि छोड़ दी तो विचार हुआ कि महर्षि बोध पर्व पर भ्रान्ति निवारण के लिए एक खोजपूर्ण लेख दिया जावे।

पूना के पश्चात् महर्षि बम्बई पधारे। ऋषि जीवन चरित्र में उनकी दिनचर्या पढ़िए। लिखा है कि महाराज प्रातः तीन बजे उठकर कुल्ला करके कुछ पानी पीकर ध्यान अवस्थित हो जाते थे। यह विक्रम सम्वत् १८३२ की बात है। महर्षि देर तक समाधि की अवस्था में प्रभु मिलन का आनन्द लेते थे।

महर्षि उदयपुर में नौलखा बाग (जहां ग्रंथ रत्न सत्यार्थ प्रकाश का निर्माण किया गया) में ठहरे थे। एक दिन बिहार का एक विद्वान् ब्राह्मण उधर आ निकला। उसने ऋषिवर को समाधिस्थ देखा तो उसकी श्रद्धा सजीव हो कर झूम उठी। यही विद्वान् स्वामी सहजानन्द कहलाए।

ऋषिबर ने इनको उपदेश देते हुए कहा था कि मन को एकाग्र करके ओ३म् का जप करने से मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं जब अधिक देर तक इस भक्ति योग को करोगे तो समाधि का मधुर सरस रस चख सकोगे। चौबीस घण्टे तक उदयपुर में ऋषि ने समाधि लगाई।

उदयपुर में ही महाराणा सज्जनसिंह को योग विषय उपदेश देते हुए कहा था कि ध्यान में ईश्वर के गुणों का चिन्तन करो, महाराणा भी एक दिन प्रातः ऋषि जी के दर्शनार्थ आए तो प्रभुभक्त दयानन्द समाधिस्थ थे। जब समाधि से उठे तो राणा ने चरण स्पर्श कर अभिवादन किया। वीरवर लेखराम ने उदयपुर की दिनचर्या का सविस्तार वर्णन किया है। कई अन्य लेखकों ने भी इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

राणा जी को प्रातःकाल के मन्त्र कण्ठ कराए और उपदेश दिया कि प्रातः काल उठकर एकान्त में ध्यान में बैठ जाओ। आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस विमल विभूति ने एक राजपुरुष को ध्यान की दीक्षा दी, उसके बारे में धृष्टता से यह प्रचार किया गया कि लोकोपकार के लिए ऋषि ने समाधि का आनन्द छोड़ा।

इन मूर्खों को इस बात का भी विचार न आया कि ऋषि ने प्रभु-चिन्तन का फल-सहायता की प्राप्ति, आत्मबल व निरभिमानता लिखा है। भला लोक-हित के लिए इस सहायता व आत्मबल से क्योंकर वंचित रहते ?

शाहपुरा में भी महर्षि अपने नियमानुसार प्रभु के ध्यान में पर्याप्त समय तक बैठा करते थे। जीवन चरित्र में लिखा है कि आगरा में महाराज समाधिस्थ होकर गम्भीर समस्याओं का समाधान खोजा करते थे। वहीं ब्रह्मानन्द नामी व्यक्ति को पं० भीमसेन ने कहा कि इस युग में ऋषि दयानन्द ब्रह्मविद्या में अद्वितीय हैं। योग में आपको महान् सिद्धियां प्राप्त हैं। हमने उनको कई बार घण्टों ध्यान में देखा है। यह १८८० ई० की बात है। निर्वाण और बलिदान से केवल तीन वर्ष पूर्व की।

अब आरम्भिक युग की एक घटना ले लीजिए। १८७३ ई० में कलकत्ता में स्वामी जी प्रातः अमृत वेला में उठ जाते। ध्यान में लीन हो जाते, समाधि से निवृत होकर भ्रमण के लिए निकल जाते, यह बात आर्यसमाज की स्थापना से दो वर्ष पूर्व की है। चासी कर्णवास में जब विक्रम संवत् १९२४ में महाराज का आगमन हुआ तो वहां भी रात्रि का अधिक समय प्रभु के ध्यान में व्यतीत करते। यह आर्यसमाज के जन्म से सात-आठ वर्ष पूर्व का वृत्तान्त है।

१८७८ ई० रुड़की से विदाई ली। वहां वैद्य थानसिंह जी ने कहा कि आप योग विद्या की इतनी महत्ता बताते हैं। हमें भी योग विद्या सिखायें।

जीवन की सांझ आई। ऋषिवर जोधपुर गए। जोधपुर विश्वविद्यालय के समीप वाले बंगला में ठहरे। वहां पहुंचे तो गोपालराव हरिदेशमुख न्यायाधीश के सुपुत्र श्री लक्ष्मण भी वहां गए। यह खानदेश में डिप्टी कलैक्टर थे। यह योग विद्या सीखने ही तो ऋषि चरणों में पहुंचे थे।

और लीजिए अन्तिम वेला आ गई। इसका गम्भीर अध्ययन करके हमने मौलिक लेख आर्यसमाज शताब्दी स्मारिका अमृतसर में दिया। पाठक उसे पढ़ें। यह विस्तृत विषय है। वह निबन्ध भी संकेत ही समझें। इतना यहां भी लिख दूं कि ३० अक्टूबर १८८३ ई० को महाराज बिना सहारा लिए उठे और समाधि में बैठ गए। क्यों जी ! जिस व्यक्ति ने ध्यान लगाना छोड़ दिया

हो, वह अन्तिम वेला में एकदम ध्यान में बैठ सकेगा ? जो व्यक्ति आठ दिन स्नान न करे, उसकी स्नान की चाह मिट जाती है। वह ऐसा आलसी बन जाता है कि कहो भी तो ठण्ड के भय से स्नान का शब्द सुनकर ही बिदक जाता है और यह तो एक आसन पर बैठ कर ध्यान लगाने की बात है।

महर्षि आर्याभिविनय में एक अत्यन्त मौलिक मर्म की बात लिखते हैं। सहस्रों वर्षों में सम्भवतः किसी ने न लिखी व कही हो। महाराज लिखते हैं कि प्रभु के सखापन के लिए आओ, गद्गद् होकर उसे पुकारें। आर्त, ज्ञान अभ्यर्थी, ज्ञानी और जिज्ञासु ईश्वर को पुकारते हैं। यह गीता का कथन है। आनन्द की प्राप्ति के लिए ईश्वर को पुकारने की बात कई भक्तों ने लिखी है। विलक्षण बात दयानन्द योगेश्वर की कि गद्गद् होकर परमेश्वर को पुकारें। ऐसा था महान्, योगी, ज्ञानी ध्यानी दयानन्द। अब आप बताएं कि किस समय ऋषि ने समाधि छोड़ी ? यह कोरी गप्प नहीं तो क्या है।

●

वे सिर उसका धड़ से क्या जुदा करेंगे ?

बात बहुत पुरानी हो गई परन्तु अब भी ऐसे लगता है कि जैसे कल की घटना हो। हम हिसार में एम० ए० प्रथम वर्ष में पढ़ते थे। आर्यसमाज के किसी कार्य से देहली गए। लौटते समय बस में अगली सीटों पर एक वृद्ध पर दृष्टि पड़ी। उस वृद्ध के पास स्थान रिक्त देखकर लेखक भी नमस्ते करके उनके पास जा बैठा। उन वृद्ध महानुभाव से जान-पहचान थी। वे थे स्वाधीनता सेनानी, देशभक्त, गौरक्षक ला० हरदेव सहाय जी। देश व समाज सम्बन्धी बातें चल पड़ीं तो श्री ला० हरदेव सहाय जी ने बड़ी टीस से कहा कि आज हिन्दू समाज में स्वामी श्रद्धानन्द जैसा एक भी निर्भीक, परमार्थी व सर्वत्यागी नेता नहीं। आर्यसमाज में उनके बाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी में बलिदान देने का साहस व उत्तम भाव था। अब कोई दूसरा व्यक्ति मुझे वैसा दिखाई नहीं देता।

ला० जी ने बताया कि जब वे पूज्य स्वामी जी के साथ मियांवाली जेल में थे तो एक दिन स्वामी जी महाराज ने मुझे अपनी कुटिया में बुलवा भेजा। महाराज का आदेश पाकर मैं (हरदेव सहाय) सहर्ष उनके चरणों में जा उपस्थित हुआ। श्री स्वामी जी ने बड़ी गम्भीर मुद्रा में मुझसे कहा कि यह कितनी लज्जा की बात है कि हिसार जिला में हिन्दी भाषियों का प्रबल बहुमत होने पर भी हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं। सरकारी स्कूलों में उर्दू का एकछत्र राज्य है। आप लोग क्या राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए कोई व्यवस्था नहीं कर सकते ?

ला० हरदेव सहाय जी ने हमें बताया कि श्री स्वामी जी ने कुछ इस ढंग से अपनी बात कही कि मैंने वहीं कारागार में निश्चय कर लिया कि बाहर जाकर यह कार्य हाथ में लेना है। स्वामी जी को वचन दिया कि अब इस कार्य

में जुट जाऊंगा। जेल से मुक्त होकर हिसार जाकर ला० जी ने अपने साथियों को साथ लेकर एक संस्था (सम्भवतः विद्या प्रचारिणी सभा नाम था) बनाई। इस संस्था ने हिसार जिला में हिन्दी माध्यम के कई स्कूल स्थापित किए। लाला जी के जन्म स्थान सातरोड़ का राजकीय विद्यालय पहले इसी संस्था द्वारा सचालित था।

उन्हीं दिनों की बात है कि आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् व लेखक श्री प्रो० जयदेव जी व लेखक सातरोड़ गए। वहां इसी स्कूल के अध्यापक ने हमें बताया कि जब लाला हरदेव सहाय जी ने महान् श्रद्धानन्द की सत् प्रेरणा से राष्ट्र भाषा व विद्या प्रचार का कार्य हाथ में लिया तो मैं उन्हीं दिनों इस संस्था की सेवा में आ गया। उन दिनों हिन्दी माध्यम से पढ़ाने वाले शिक्षक भी थोड़े ही थे। उसी अध्यापक ने बताया कि उन दिनों सौभाग्य से श्री हरदयाल चोपड़ा Divisional Inspector of schools बनकर हिसार क्षेत्र में आ गए।

आज के आर्यसमाजी वीर हरदयाल को सर्वथा भुला चुके हैं। श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज व पं० शान्ति प्रकाश जी जैसे पुराने आर्यों से उनकी समाज सेवा की गाथाएं सुनिए। इस आर्यवीर ने राजकीय सेवा में रहते हुए विद्या प्रसार व हिन्दी प्रचार का जो कार्य किया, उसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। यहां उनकी सेवाओं की चर्चा प्रसंगेतर समझी जावेंगी परन्तु इतना बता दें कि इस आर्यवीर के आगमन से ला० हरदेव सहाय जी के आंदोलन को बड़ा बल मिला। हिन्दी प्रचार का आंदोलन विराट् रूप धारण कर गया। लोगों की व सरकार की समझ में यह नहीं आ रहा था कि यह आंदोलन एकदम जोर कैसे पकड़ गया। किसी को भी यह पता न था कि इस आंदोलन का बीज वीर संन्यासी ने कारागार में वपन किया था। एक बात फिर कह दें कि श्री हरदयाल के नाम व काम से पुराने आर्य पत्रों की फाईलें भरी पड़ी हैं। वह पंजाब आर्यवीर दल के भी अधिकारी रहे। ऐसा मुझे कुछ-कुछ ध्यान आता है। उपरोक्त घटना से पता चलता है कि श्री स्वामी जी महाराज का कितना गहरा व ठोस चिन्तन था। उनके गतिमान् व्यक्तित्व में कितना प्रभाव था कि उनके मुख से निकले शब्द को मूर्तरूप देने वाले नवयुवक सिर धड़ की बाजी लगाने आगे निकल आते थे।

केरल में एक ९७ वर्षीय साधु स्वामी गोविन्द प्रसाद अभी जीवित हैं। इन्हें स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गायत्री की दीक्षा दी। इनका जन्म एक दलित परिवार में हुआ। स्वामी जी महाराज ने जिन लोगों को वायकम सत्याग्रह में अपने साथ लिया; उनमें ये भी एक थे। आज तो दलितों के मन्दिर प्रवेश की बात उठाई जाती है तो उसका प्रयोजन इतना भेद-भाव मिटाना व आर्य जाति को एक करना नहीं होता, जितना कि राजनैतिक स्टण्ट व व्यक्तिगत प्रचार होता है। 'हरिजन' हरिजन कहकर जन्म की जाति-पांति को ये बोगस धर्मगुरु बढ़ावा देते हैं। स्वामी गोविन्दप्रसाद आज भी जब वायकम सत्याग्रह के संस्मरण सुनाते हुए श्री महाराज की सूझ-बूझ की प्रशंसा करते हैं कि स्वामी जी ने सब को गायत्री मन्त्र कण्ठ करवाया। यह सत्याग्रह भी तो जाति भेद के विरुद्ध था। जब भीमकाय संन्यासी रणवांकुरा श्रद्धानन्द सिर हथेली पर धर कर आगे-आगे निकला तो पीछे-पीछे केरलीय सत्याग्रही थे। सब पवित्र गायत्री पाठ कर रहे थे।

पहले शोर मचता था कि आज अमुक नायर सत्याग्रह करेगा, अमुक इड़वा सत्याग्रह करेगा, अमुक दलित भाई सत्याग्रह में होगा। आज जिस से पूछो तुम कौन हो, सबका एक ही उत्तर है 'हम आर्य हैं', 'हम वैदिक धर्मी हैं', 'हम ऋषिवर दयानन्द के सैनिक हैं।' यह श्रद्धानन्द का एक अद्भुत चमत्कार था। क्षण भर में जाति भेद ध्वस्त हो गया। केरल के नारायण गुरु स्वामी व महात्मा गांधी तो श्री महाराज के केरल पहुंचते ही समझ चुके थे कि अब कृत्रिम भेद नष्ट हो के रहेंगे। जब ये सत्याग्रही मन्दिर के पास पहुंचे तो किसी को हिम्मत न पड़ी कि तेजस्वी श्रद्धानन्द पर हाथ उठाता। सत्याग्रही भी उस दिन पिटाई से बच गए। जब पुलिस ने इन्हें पकड़कर बिठाया तो किसी ने गोविन्द प्रसाद को पहचान लिया कि यह तो दलित कुल में जन्मा युवक है। सब चकित थे कि यह युवक श्रद्धानन्द का प्यारा कैसे बन गया। इसे इतना सम्मान कैसे मिल गया ?

श्रद्धानन्द महाराज की गौरव गाथा कहां से सुनाएं व कहां से छोड़ें। जब लाला लाजपतराय को देश से निष्कासित करके मांडले भेजा गया तो वहां श्रीयुत गोखले की संस्था के एक मराठे बंधु ने सरकार के कोप की चिन्ता न

करते हुए भी लाला जी के चरण छुए। इधर विडम्बना यह थी कि लाला जी के साथी डी० ए० वी० कालेज कमेटी के सब राय बहादुर लोग लाला जी को Disown (त्याग) कर गये। राय बहादुर मूलराज (जिसे स्वामी दर्शनानन्द आदि सब नेताओं ने आर्यसमाज में फूट का उत्तरदायी ठहराया है) ने तो यहां तक कहा था कि प्रत्येक उस व्यक्ति को आर्यसमाज से निकाल दिया जावे जिसका राजनीति से सम्बन्ध है। ईश्वर का धन्यवाद कि आर्य जनता ने यह कायरतापूर्ण 'उपदेश' न सुना। 'राजनीति से सम्बन्धित' व्यक्ति से रायबहादुर का अभिप्राय अंग्रेजी शासन की आंख में चुभने वाला व्यक्ति था।

तब सुधीर श्रद्धानन्द ने अपनी हुंकार से आर्यसमाज में नया जोश भर दिया। प्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय श्री सन्तराम बी० ए० व कहानीकार सुदर्शन जी दोनों लाहौर की उस सभा में श्रोता बनकर सम्मिलित हुए। जिसमें महात्मा मुंशीराम ने डटकर लाला लाजपतराय को निर्दोष घोषित करते हुए ललकार कर कहा कि 'लाला लाजपतराय हमारा आर्य भाई है।' विरोधी भी दंग थे कि यह क्या दृश्य देख रहे हैं कि कालेज पक्ष तो अपने नेता को बेगाना घोषित कर रहा है और महात्मा मुंशीराम छाती ठोककर उसे अपना भाई व नेता घोषित कर रहा है। सन्तराम जी ने लिखा है कि तब लगता था कि आज तो मुंशीराम को हथकड़ियां लगेंगी। न जाने और कौन-कौन पकड़ा जायेगा परन्तु सहस्रों के जन समूह में जब नरनाहर मुंशीराम ने सहस्रबाहु परमेश्वर का नाम ले लेकर उस अशरण शरण सर्वव्यापक प्रभु के आश्रित होकर आर्यों को निर्भीक होकर अपने कर्त्तव्यों के पालन की प्रेरणा दी तो आतंक के स्थान पर आत्मविश्वास का वातावरण पैदा हो गया। यह भी स्मरण रहे कि कालेज पक्ष में जो साधारण आर्यसमाजी थे, वे भी तब रायबहादुरों की कायरता से लज्जित व दुःखी थे। यदि तब स्वामी श्रद्धानन्द व उनके सहयोगी यथा धर्मवीर बजीरचन्द जी, लाला लाजपतराय के Defence (पक्ष) में छाती तानकर आगे न आते तो आर्यसमाज के इतिहास में 'कायरतापूर्ण कुकृत्यों' का इतिहास जुड़ जाता।

जब कभी कहीं किसी गोरे ने किसी भारतीय को अकारण पीटा व जान से मारा तो महात्मा मुंशीराम झट निरपराधी की हत्या की निन्दा करते हुए अंग्रेजों के न्याय व प्रशासन को निर्भीक होकर रगड़ते थे। ऐसे बीसियों सम्पादकीय

'सद्धर्म प्रचारक' में मिलते हैं। भारतीय जनता मानवता के मान और शूरता की शान श्रद्धानन्द की सदा ऋणी रहेगी।

महान् श्रद्धानन्द के विरोधी पं० गोपीनाथ कश्मीरी ने उनके बलिदान पर श्रद्धांजलि देते हुए लिखा था कि एक बार शास्त्रार्थ में एक पुस्तक का प्रमाण देखने के लिए गोपीनाथ ने मुंशीराम जी से पुस्तक मांगी। मुंशीराम जी ने बड़ी उदारता से, सहज रीति से वह पुस्तक प्रतिपक्षी को दे दी, जब कि ऐसे अवसर पर लोग कम ही ऐसी उदारता दिखाते हैं परन्तु मुंशीराम तो सत्य का बोल-बाला करने के लिए शास्त्रार्थ करते थे। उनके सामने हार-जीत का प्रश्न न था। गोपीनाथ ने यह भी लिखा है कि जब गोपीनाथ ने उन पर ऐतिहासिक अभियोग चलाया तो एक ओर तो गोपीनाथ अकेला था, दूसरी ओर आर्यसमाज के सारे वकील निःशुल्क केस लड़ने को महात्मा जी के पीछे दीवार बनकर खड़े हो गये। आर्यसमाज के सभी युवक (कालेज पक्ष में भी सब सिद्धांतवादी मुंशी-राम के पीछे थे।) महात्मा मुंशीराम के पूरे साथ थे। गोपीनाथ का भाव यह है कि आर्यवीरों में तब भले ही दो दल थे, परन्तु दिल तो एक था।

सिर पर कफन बांधे मुंशीराम जब संग्राम में कूदता था तो धरती पुकार-पुकार कर कहती थी—

हथेली पै सिर जो लिये फिर रहा हो।
वे सिर उसका धड़ से जुदा क्या करेंगे॥

आइए! उच्च स्वर में कहें—

बोल दिल्ली की धरा जयकार तू।
शूरता की शान श्रद्धानन्द का॥

क्या घातक की गोलियों से हमारा स्वामी मर गया? नहीं! नहीं! नहीं!

मर के स्वामी हमारे अमर हो गये।
मौत रो रो के हाथों को मलती रही॥

आइए! इस जीवन-दायिनी मृत्यु की प्राप्ति के लिए हम भी ऐसे सत्कर्म करें।

'मौत ऐसी हो नसीबों में तो जीने में क्या है।'

तुरन्त प्रकाशित वैदिक साहित्य

वैदिक नित्य कर्म विधि — श्री हरिदेव आर्य एम० ए०

यह पुस्तक अपनी शैली की अनोखी है। जिसका प्रमाण है कि आज इस पुस्तक का षष्ठ संस्करण आपके हाथों में है। तो रंग में छपाई, आफसैट प्रिंटिंग पेपर मूल्य पुराना १८) रुपये।

आनन्द रत्न — श्री आनन्द मुनि वानप्रस्थ

इस पुस्तक में वानप्रस्थ जी ने अपने विचारों को एकत्रित करके संकलित कर दिया है। आपके विचार भी पठनीय तथा संग्रहणीय हैं। काग़ज और छपाई अत्युत्तम है। मूल्य ४)।

रामायण परिचय — लेखक—श्री छाजूराम शास्त्री

आलोचनात्मक शैली और विवेचनापूर्वक लिखित यह पुस्तक रामायण पर विशेष परिश्रम ने लिखी है। आज हमारे देशवासी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं और होनी भी चाहिए। इसमें दो मत नहीं हैं। फिर भी खेद का विषय तो तब से बना जबसे हमारे साहित्य को, हमारी संस्कृति को अनार्यों ने अनेक प्रकार से दूषित कर दिया। उन सभी घटनाओं को पढ़ें और अपनी शंका का समाधान पाएंगे।

वैदिक विवाह संस्कार विधिः — श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री

छपकर तैयार है। मंत्र मोटे अक्षरों में, प्रत्येक विधि की अपनी शैली में सुन्दर और रोचक व्याख्या। दो रंगों में मुद्रित, आफसेट प्रिंटिंग पेपर, आकर्षक टाईटिल, सुन्दर और मजबूत बाइंडिंग, पृ० सं० १७२, मूल्य १५)।

वैदिक संस्कार रहस्य — श्री आनन्द मुनि वानप्रस्थ

इस पुस्तक में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म आदि प्रथम आठ संस्कारों की विधि और व्याख्या बताई है। वैदिक संस्कारों की अनुपम व्याख्या प्रत्येक नव-दम्पत्ति को अवश्य पढ़नी चाहिए। और इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए।

कागज बढ़िया, छपाई उत्तम और आकर्षक टाईटिल, पृष्ठ सं० १७२ मूल्य १५) रुपये।

महिला गीतांजली — श्रीमती सुशीला

अनेक बार ऐसे पत्र आये थे कि महिला समाज के लिए उपयोगी भजनों का भी संकलन हो। यह अभाव भी चिरकाल से बना हुआ था। प्रस्तुत गीतांजली में विवाह के अवसर के गीत, मुण्डन, नामकरण आदि सभी अवसर पर गाये जाने जाने वाले भजनों का सुन्दर संकलन बन पाया है। कागज और टाईटिल बढ़िया और आकर्षक है। मूल्य ६) रुपये।

कर्म और भोग — लेखक—स्वामी अखिलानन्द जी महाराज

यद्यपि यह पुस्तक अनेक बार प्रकाशित हो चुकी है। फिर भी मांग अत्यधिक है। कर्म और भोग की सभी समस्याओं का अत्यन्त सरलम शैली से प्रश्नोत्तर रूप में लिखा गया है।

छपाई और कागज अत्युत्तम है। टाईटिल विशेष आकर्षक है। मूल्य १२ रुपये।

सुखी गृहस्थ — प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

विवाह के अवसर पर उपहार में देने योग्य पुस्तक। मूल्य ५) रुपये।

अच्छी-अच्छी कथाएं — श्री मधुर प्रकाश शास्त्री

रोचक, शिक्षाप्रद और प्रेरणाप्रद कहानियों का संकलन। मूल्य १८) रुपये।

म धु र - प्र का श न

२८०४, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

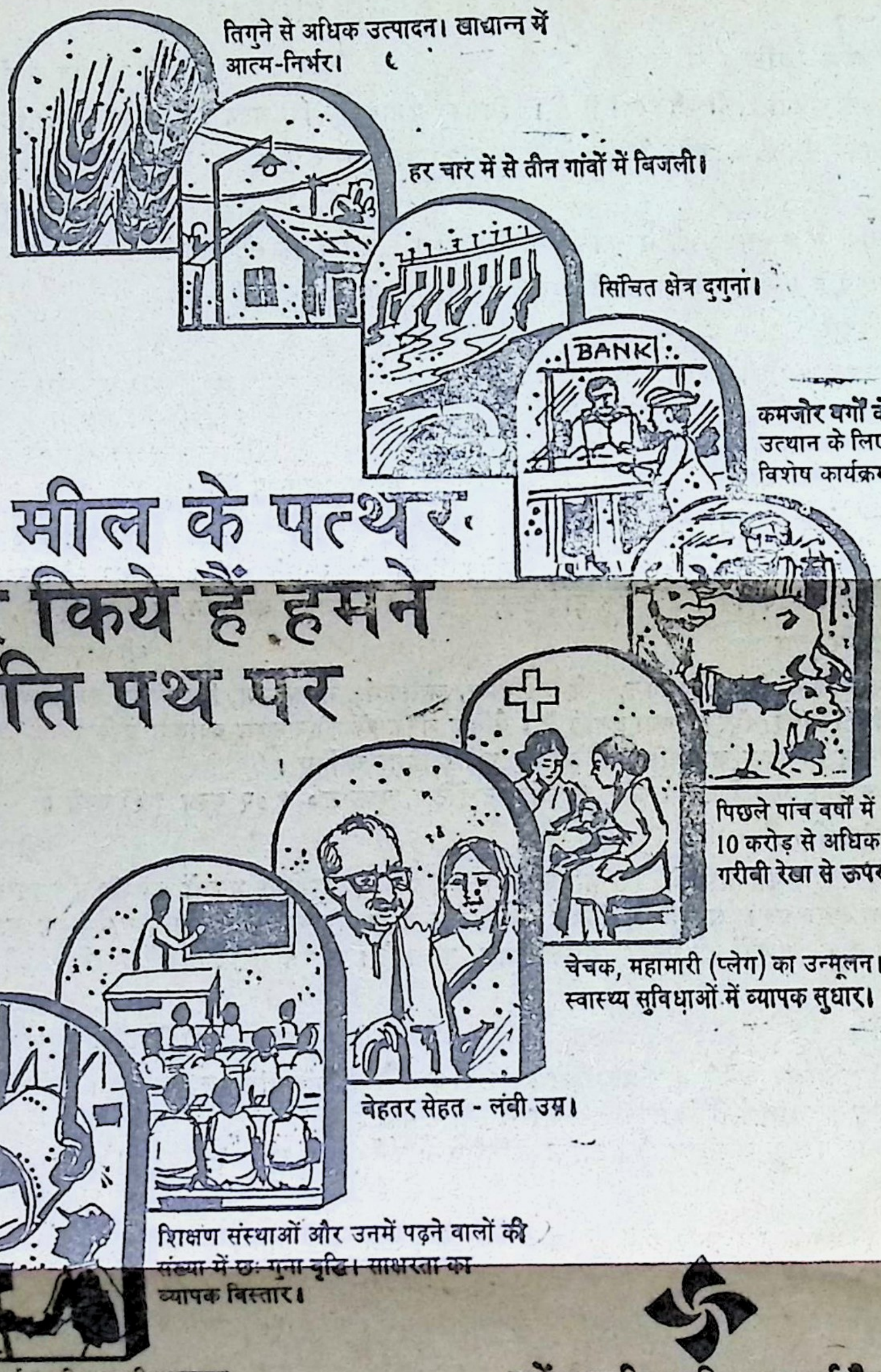
तिगुने से अधिक उत्पादन। खाद्यान्न में आत्म-निर्भर।
हर चार में से तीन गांवों में बिजली।
सिंचित क्षेत्र दुगुना।
BANK
कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए विशेष कार्यक्रम।
कई मील के पत्थर पार किये हैं हमने प्रगति पथ पर
पिछले पांच वर्षों में 10 करोड़ से अधिक लोग गरीबी रेखा से ऊपर।
चेचक, महामारी (प्लेग) का उन्मूलन। स्वास्थ्य सुविधाओं में व्यापक सुधार।
बेहतर सेहत - लंबी उम्र।
शिक्षण संस्थाओं और उनमें पढ़ने वालों की संख्या में छः गुना वृद्धि। साक्षरता का व्यापक विस्तार।
उत्पादन में प्रति वर्ष 9 प्रतिशत की शानदार वृद्धि। प्रमुख औद्योगिक देशों में भारत का उच्च स्थान।
हमें अपनी प्रगति पर गर्व है।
davp 89/59

कम्पनी स्थापित : १९५३ ओ३म् फोन : २११२०२८
२२०२२६९

स्वर्ण अवसर

फैक्ट्रियों, मकानों और दुकानों के लिए
उत्तम प्लाट

लोनी रोड पर (शाहदरा दिल्ली) से केवल चार मील

— सेठी मार्किट
— आर्यनगर इण्डस्ट्रियल स्टेट
— लक्ष्मी गार्डन

देहली आदर्श फाईनेन्शियर्ज
(प्रा०) लि०

सेठी बिल्डिंग, विजय चौक
कृष्णानगर, दिल्ली-११००५१

राजपाल सिंह शास्त्री सम्पादक, ने नीलिमा प्रिंटर्स, दिल्ली-६
में छपवाकर 'मधुर-लोक' कार्यालय बाजार सीताराम दिल्ली-६
से प्रकाशित किया।

Licenced to post without R. R. No—14243-65
prepayment No—U(DN-63) जून १९८९ डी (डी० एन०)२४
मधुर-लोक कार्यालय, आर्यसमाज मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली-६

मासिक-पत्र "मधुर-लोक" का सदस्यता शुल्क में वृद्धि

गत दो वर्षों से निरन्तर आर्थिक-हानि सहन करते हुए भी "मधुर-लोक" प्रतिमास नियमित रूप से, अबाध गति से प्रकाशित हो रहा है। अब इस आर्थिक बोझ को उठाने के लिए आप सभी सदस्यों तथा पाठकों को सहभागी बनाने के लिए आवेदन है। नवम्बर १९८९ से "मधुर-लोक" का सदस्यता शुल्क ४०) रुपये होगा। जो सदस्य अक्तूबर ८९ तक अपना अग्रिम शुल्क भेज सकेंगे उनके लिए वही पुराना शुल्क ३०) रुपये ही होगा।

नवम्बर ८९ से एक वर्ष का सदस्यता शुल्क ४० रुपये होगा। दो वर्ष का अग्रिम शुल्क ७०) रुपये होगा। इसी प्रकार तीन वर्ष का शुल्क १००) रुपये रहेगा।

आपकी सुविधा के लिए ऐसा निश्चय किया गया है। अतः आप तुरन्त ध्यान दें, मनन करके अनुग्रह कीजियेगा।

व्यवस्थापक—"मधुर लोक"
२८०४—गली आर्यसमाज, बाजार सीताराम,
दिल्ली-६